प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मन्त्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५०

मूल्य
अजिल्द डेढ़ रुपया
सजिल्द दो रुपये

मुद्रक
कृष्ण प्रसाद दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशककी ओरसे

इस पुस्तकमे गाधीजीके १५ अगस्त १९४७ से लेकर २९ जनवरी १९४८, यानी अतिम समयतकके लेखोका सग्रह है। इन लेखोमें गाधी-जीने आजादीके साथ-साथ देशमे पैदा होनेवाली स्थितिपर तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओपर अपने विचार प्रकट किए है। बापूकी अतिम रचना भी, जिसमें उन्होने काग्रेसके भावी रूपको सामने रखकर उसके विधानकी रूप-रेखा प्रस्तुत की थी, इस पुस्तकमें सम्मिलित कर दी गई है।

एक प्रकारसे यह पुस्तक १५ अगस्त १९४७ से लेकर बापूके निर्वाण-तकके समयका इतिहास है।

पुस्तककी सामग्री 'हरिजन' पत्रोसे इकट्ठी की गई है, जिसके लिए हम 'नवजीवन ट्रस्ट'के आभारी है।

—मत्री

विषय-सूची

पंद्रह अगस्तके बाद

पंद्रह अगस्तके बाद

: १ :

पंद्रह अगस्तका उत्सव

मैंने १५ अगस्तको लोगोसे उपवास करने, प्रार्थना करने और चरखा चलानेकी बात कही है। लोग कहते है, "यह क्या है ? क्या यह रज मनानेकी निशानी नही है ?" लेकिन ऐसा नही है। दु खका कारण यह है कि देशके दो टुकडे हो गए है, लेकिन ब्रिटिश हुकूमत हिंदुस्तान छोड रही है, इसलिए खुशी मनानेका कारण भी है। आज उपवास रखकर और प्रार्थना करके अपने आपको पवित्र बनानेका हमारे पास बहुत बडा कारण है। ६ अप्रैल, १९१९के दिन पूरी-पूरी खुशी मनानेका कारण मौजूद था, जब कि सारे देशमे जागरणकी लहर फैल गई थी और हिंदू-मुसल्मान और दूसरे लोग बिना किसी भेद-भाव या शक-शुबहेके आपसमे प्रेमसे मिलते थे। लेकिन उस दिन भी मैंने लोगोको प्रार्थना करके, उपवास रखकर और चरखा चलाकर उत्सव मनानेकी सलाह दी थी। आज तो हमारे लिए अपने-आपको भगवानके सामने झुकानेका बहुत ही ज्यादा बडा कारण मौजूद है, क्योकि आज भाई-भाई आपसमें लड़ रहे है, खाने और कपड़ेकी भयकर तगी है, और देशके नेताओपर इतनी बड़ी जिम्मेदारीका बोझ आ पडा है कि जिसके नीचे भगवानकी कृपाके बिना मजबूत-से-मजबूत आदमीकी कमर भी टूट सकती है।

कुछ लोग १५ अगस्तके दिन काले झडे दिखानेका विचार कर रहे है। मै इसका समर्थन नही कर सकता। उस दिन मातम मनानेका कोई कारण नही है।

मैने सुना है कि लोग खादी-भडारोके पुराने झडे नही खरीदना चाहते और नई बनावटके झडोकी माग करते है। नया झडा भी शुद्ध खादीका ही होगा। जबतक पुराने झडे बिक न जाय तबतक खादी-भडारोको नए झडे बेचनेसे इन्कार कर देना चाहिए। अगर लोग चरखेके पीछे रहनेवाली सच्ची भावनाको समझ ले तो वे खादी-भडारोके—जो गरीबोकी जायदाद है—पास एक भी पुराना झडा होगा तबतक उसे खरीदनेमे ही अपनी इज्जत और शान समझेंगे।

नई दिल्ली, २८-७-'४७

: २ :

पंद्रह अगस्तके बाद कांग्रेस

सवाल—१५ अगस्तके बाद हिंदुस्तानके दो राज्योमें दो कांग्रेसें होगी या एक ही रहेंगी? या कांग्रेसकी जरूरत ही न रह जायगी?

जवाब—मेरे विचारसे ऐसी सस्थाकी आजतक जितनी जरूरत थी उससे कही ज्यादा अब बढ जायगी। बेशक उसका काम बदल जायगा। अगर काग्रेसजन नादानीसे दो धर्मोकी बुनियाद पर दो राष्ट्रोके सिद्धात स्वीकार नही कर लेते तब तो एक हिंदुस्तानके लिए एक ही काग्रेस हो सकती है। हिंदुस्तानके

बंटवारेसे अखिल भारतीय संस्थाका बंटवारा नही होता—होना भी नही चाहिए। हिंदुस्तानके दो सार्वभौम राज्योमे बंट जानेसे उसके दो राष्ट्र नही हो जाते। मान लीजिए कि एक या ज्यादा रियासतें दोनो राज्योसे बाहर रहती है, तो क्या कांग्रेस उन्हे और उनके लोगोको राष्ट्रीय कांग्रेससे बाहर कर देगी? क्या वे कांग्रेससे यह मांग नही करेगे कि वह उनकी तरफ विशेष ध्यान दे और उनकी विशेष परवा करे? यह जरूर है कि अब पहलेसे ज्यादा पेचीदा सवाल खडे होगे। उनमेसे कुछको हल करना मुश्किल भी हो सकता है, लेकिन कांग्रेसके दो टुकडे करनेका यह कोई कारण नही होगा। इसके लिए कांग्रेसको अब तककी अपेक्षा ज्यादा बडी राजनीति, ज्यादा गहरे विचार और ज्यादा ठंडे दिमागसे फैसला करनेकी जरूरत होगी। हमे पहलेसे ही लाचार बना देनेवाली मुश्किलोका विचार नही करना चाहिए। आजतक जो बुराइया हो चुकी वे काफी है।

सवाल—क्या कांग्रेस अब सांप्रदायिक संस्था बन जायगी? आज इसके लिए बार-बार मांग की जा रही है। अब जब कि मुसलमान अपने आपको परदेशी समझते है तब हम भी अपने यूनियनको हिंदू हिंदुस्तान कहकर क्यो न पुकारें और उसपर हिंदू-धर्मकी अमिट छाप क्यो न लगावें?

जवाब—यह सवाल पूछनेवालेके घोर अज्ञानको जाहिर करता है। कांग्रेस कभी हिंदू-संस्था नही बन सकती। जो उसे हिंदू-संस्था बनाएगे वे हिंदुस्तान और हिंदू-धर्मके दुश्मन होगे। हिंदुस्तान करोडो लोगोका राष्ट्र है। उनकी आवाज किसीने नही सुनी है। अगर कोई दो राष्ट्रके सिद्धातको मानकर

काग्रेसको हिदू-सस्था बनानेपर जोर देते है तो वे शहरकी शोर-गुल मचानेवाली सस्थाए ही है। हम उनकी आवाजको हिदुस्तानके लाखो गावोके करोडों लोगोकी आवाज समझनेकी गलती न करे। तीसरी बात यह है कि सघके मुसलमानोने यह जाहिर नही किया है कि वे परदेशी है। आखीरमे, हिदुओकी बहुत-सी कमियोके बावजूद भी, बिना किसी विरोधके, यह दावा किया जा सकता है कि हिदू-धर्मने दूसरोंका कभी बहिष्कार नही किया। अलग-अलग धर्मोको माननेवाले लोगोसे हिंदुस्तान एक और अखंड राष्ट्र बना है। उन सबका हिदुस्तानके नागरिक होनेका एक-सा हक है। बहुमतवाली जातिको दूसरोको दबानेका कोई हक नही है। तादाद या तलवारकी ताकत सच्चा हक नही माना जायगा। न्यायसे मिला हुआ हक ही सच्ची ताकत होती है, हालांकि इसके खिलाफ भी बहुत-सी मिसाले मिलती है।

सवाल—गैर मुस्लिमोका पाकिस्तानके झंडेकी तरफ क्या रुख होना चाहिए ?

जवाब—पाकिस्तानका झडा अभी बना तो नही है। शायद वह मुस्लिम लीगका झंडा ही होगा। अगर पाकिस्तान और इस्लाम एक ही चीज है तो उसका झंडा वही होना चाहिए, जो दुनियाके सारे मुसलमानोका झडा है। और जो इस्लामके दुश्मन नही, उन सबको उसकी इज्जत करनी चाहिए। मै इस्लाम, ईसाई-धर्म, हिदू-धर्म या दूसरे किसी धर्मका ऐसा झंडा नही जानता। इतिहासका अच्छा जानकार न होनेके कारण मै गलती कर सकता हू। अगर पाकिस्तानका झडा,

फिर वह किसी भी रंग और बनावटका हो, पाकिस्तानमे रहनेवाले किसी भी धर्मके लोगोकी एक-सी नुमाइंदगी करता है तो मै उसे सलामी दूंगा और आपको भी देनी चाहिए। दूसरे शब्दोमे, दोनो उपनिवेशोको एक दूसरेके दुश्मन नही बनना चाहिए। राष्ट्र-सघ (कामनवेल्थ)के उपनिवेश या डोमिनियन एक दूसरेके दुश्मन नही हो सकते। मै दु.खभरी दिलचस्पीसे देख रहा हू कि दक्षिण अफ्रीकाका उपनिवेश हिंदुस्तानके दो उपनिवेशोके साथ कैसा बरताव करता है। क्या दक्षिणी अफ्रीकाके गोरे अब भी हिंदुस्तानियोसे नफरत कर सकते है ? क्या दक्षिणी अफ्रीकाके यूरोपियन हिंदुस्तानियोके साथ, रेलके एक ही डिब्बेमे सफर करनेसे भी, सिर्फ इसलिए इन्कार कर सकेंगे कि वे हिंदुस्तानी है ?

नई दिल्ली, २९-७-४७

: ३ :

सच्चा इस्लाम

एक मुसलमान भाईने जो पत्र मेरे पास भेजा था, उसमेसे निजी जिक्रको छोडकर बाकी मै नीचे दे रहा हू :

"इस्लाम सारी दुनियाका धर्म है। उसका महान् संदेश है सत्यके लिए कोशिश करना और उसे पहचानना। मौलाना जलालुद्दीन रूमीकी नीचे दी गई कवितासे यह साफ मालूम होता है कि खलीफा अली जैसे महात्माओको भी सत्यको पानेके लिए कितनी बड़ी कोशिश करनी पड़ती है :

१. पैगम्बर साहबने अलीसे कहा—'ऐ अली, तुम खुदाके शेर हो, सबसे बड़े बहादुर हो। फिर भी तुम अपनी शेर-जैसी बहादुरी और ताकतके भरोसे मत बैठो।

(लेकिन) तुम सत्यके पेड़के नीचे आसरा लो और जिसकी बुद्धि ज्ञानमय हो, उस आदमीकी शरणमें जाओ।

रूढ़िवादी धर्मको माननेवाले पुराणपंथी आदमीके रास्ते चलकर तुम सत्यको नहीं पा सकोगे।

धरतीपर उस पुरुषकी छाया काफके परबत जैसी है।
उसकी आत्मा ऊंचे आसमानमें उड़नेवाले गरुड़ जैसी है।

कयामतके दिनतक मैं उसका गुणगान किया करूं, तो भी वह अधूरा ही रहेगा।

याद रखो, वह सत्य मनुष्यकी शक्लमें छिपा हुआ है।
और, एक अल्ला ही उस सत्यको जाननेवाला है।

२. तुम नाम और रूपको छोड़कर गुणोंको पहचाननेकी कोशिश करो, जिससे ये गुण तुम्हें दुनियाके सारतक ले जायं।

इस दुनियाके संप्रदायों या फिरकोंके भेद उनके नामोंसे पैदा हुए हैं; लेकिन जब ये सारे संप्रदाय दुनियाके सारतक पहुंचते हैं तभी उनके माननेवाले खुदाकी शांति पाते हैं।

आज मुस्लिम हिंदुस्तानके बारेमें सबसे बड़े दुःखकी बात यह है कि वह नामोंके जालमें फँस गया है। उसने इस्लामकी सच्ची सीखको भुला दिया है। इस सीखको मानकर ही वह सत्यको पहचान सकता था।

हिंदुस्तानके रहनेवाले इस्लामके अनुयायी अपनी-अपनी मरजीके मुताबिक काम करते हैं और फिर भी यह कहते हैं कि हम इस्लामके आदेशके माफिक काम करते हैं; लेकिन उन्हें इस बातका ध्यान नहीं रहता कि :

चांद अपनी चांदनी फैलाकर दुनियाको ठंडक देता है और कुत्ते उसके सामने भूंकते हैं :

हर प्राणी अपने स्वभावके मुताबिक काम करता है और हर प्राणी और हर चीजको खुदाके हुक्मसे उसके लायक काम मिला हुआ है ।

सनातन समयकी सौगंध खाकर मैं कहता हूं कि जो अच्छे कामोंमें विश्वास रखते हैं और उन्हें करते हैं और जो सत्य व अहिंसाका प्रचार करते हैं, उनके सिवा दूसरे सारे आदमी अपना सब कुछ खो देते हैं ।

इसलिए मैं आपसे विनती करता हू कि जब आप मुसलमानोके कामोकी चर्चा करें तब मेहरबानी करके इस्लामका जिक्र न कीजिए, क्योंकि आज ये दोनो एक-दूसरेसे बहुत दूर हो गए हैं ।"

काश, यह इस्लाम पाकिस्तानके कामोमे दिखाई दे और इस खत लिखनेवाले भाईका उलाहना गलत साबित किया जा सके !

नई दिल्ली, २०–७–'४७

: ४ :

जिंदा दफनाया ?

एक हैदराबादी भाई लिखते है :—

"गांधीको जिंदा दफनाया जा रहा है ।

गांधीके माने गांधीके उसूल । इन्हीं उसूलोसे हम इस दरजेपर पहुंचे हैं ; लेकिन जिस सीढ़ीसे हम ऊपर उठे, उसीको तोड़-ताड़कर फेंक दिया

जा रहा है"। यह काम वे लोग कर रहे हैं जो गांधीके सबसे बड़े अनुयायी भी कहलाते हैं। हिंदू-मुस्लिम एकता, हिंदुस्तानी, खद्दर, ग्रामोद्योग—ये सब खतम कर दिए गए हैं। फिर भी जो इनकी बातें करते हैं, वे या तो धोखेमें हैं, या जान-बूझकर धोखा दे रहे हैं।"

मुझे जिंदा दफनानेका यह तरीका सबसे अच्छा है। 'दफनाया गया' ऐसे तो मैं कैसे कबूल करूं? मेरे सबसे बड़े अनुयायी कौन, और सबसे छोटे कौन? मेरा तो एक ही अनुयायी है—वह मैं या सब हिंदी। मेरे अनुयायी वे ही है, जो ऊपरकी बाते मानते है। मेरी उम्मीद तो अब भी रहती है कि करोड़ो देहाती ये चारो चीजे मानते हैं। फिर भी इस इल्जाम मे काफी सचाई है। लेकिन अब मैं देख रहा हू कि मुस्लिमलीगी भाई यह कहने लगे है कि हम सब भाई-भाई है। अब तो यह भी तय हो गया है कि हम सब दोनो हिस्सोके शहरी है। पासपोर्टकी जरूरत आज तो नही मानी जायगी। कोई एक हुकूमत शुरू करे तभी ऐसा हो सकता है। हम आशा रखे और ऐसा बरताव करे जिससे पासपोर्टकी जरूरत ही न रहे। यह भी आशा रखे कि दोनोंमे-से कोई भी खद्दर नही छोडेगे, देहाती उद्योग-धन्धोंको नुकसान नही पहुंचाएंगे। हिंदुस्तानीके बारेमे लिख चुका हू। उसे कैसे छोडा जाय? मुसलमान जिनकी मातृभाषा उर्दू है, उर्दू कैसे छोडे? उन्हे अपनी उर्दू आसान करनी होगी और हिंदुओंको, जो उर्दू नही जानते, अपनी हिंदी आसान करनी होगी। तभी दोनो एक दूसरेको समझ सकेगे। सबसे बडी बात तो लेखकने छोड ही दी है। हिंदुओको अस्पृश्यता और जात-

'पात छोड़कर शुद्ध बनना होगा। मुसलमानोको हिंदुओकी नफरत छोडकर साफ होना होगा।
श्रीनगर, ३–८–'४७

: ५ :

तिरंगा झंडा

जिन हैदराबादी भाईने यह लिखा है कि 'गाधीको जिदा दफनाया जा रहा है' वे ही आगे चलकर झडेके बारेमे लिखते है .—

"तिरंगा झंडा हमारे आदोलनका प्रतीक था। उससे चरखा हटाकर सबसे बड़ा अपराध किया गया है। नए चक्रका या पुराने अशोकके चक्रका गाधीके चरखेसे कोई सबंध नहीं है, बल्कि वे परस्पर विरोधी हैं। गांधीका चरखा धर्मसे, मजहबसे परे है, मगर नया चक्र हिंदू-धर्मका प्रतीक है। गाधीका चरखा 'अहिंसक परिश्रम' का प्रतीक है, मगर नया चक्र 'सुदर्शन चक्र' का प्रतीक है (ऐसा मुंशीजी अपने भाषणमें कहते हैं)। सुदर्शन चक्र हिंसाका प्रतीक है। इस प्रकार नए झंडेसे हिंदू-धर्मके नामपर राष्ट्रकी हिंसावृत्तिको उत्तेजन मिलेगा। उस दिशामें यह जान-बूझकर प्रयत्न किया जा रहा है। यह पाकिस्तानको मिलानेका नही, बल्कि पाकिस्तानको पक्का करनेका तरीका है।"

मुशीजीने जो कहा उसे मैंने पढा नही है। अगर झडेका वही अर्थ है, जो ऊपर बताया गया है तो राष्ट्रीय झडा गया। अशोकका चक्र किसी भी हालतमे हिंसाका प्रतीक नही बन सकता। महाराज अशोक बौद्ध थे, अहिंसाके पुजारी थे।

सुदर्शन चक्रका तो झंडेके चक्रके साथ ताल्लुक नही हो सकता। सुदर्शन चक्र मेरी दृष्टिसे अहिंसाकी निशानी है। लेकिन यह मेरी ही बात हुई। साधारण रूपसे सुदर्शन चक्र हिंसाका साधन माना जाता है। इसमे शक नही कि नए झंडेसे और उसपर जो बहस हुई है, उससे यह कहा जा सकता है कि अगरचे चरखेका मूल्य गया नही है, फिर भी कम तो जरूर हुआ है। अशोक-चक्र और सूत कातनेका चरखा एक है या नही, यह तो आखिरकार लोगोके आचारपर निर्भर रहेगा।

श्रीनगर, ३–८–'४७

: ६ :

चार सवाल

श्रीनगरमे मुझे लाला किशोरीलालके बगलेमे ठहराया गया था। वहां मैं तीन दिन रहा। इस दरमियान मैंने लालाजीके कंपाउंडमे प्रार्थना तो की, मगर कोई भाषण नही दिया। दिल्ली छोड़नेके पहले मैंने यह ऐलान कर दिया था कि काश्मीरमे मैं कोई भाषण नही दूगा। मगर प्रार्थनामे शामिल होनेवाले भाइयोमेसे कुछने मुझसे सवाल पूछे। उनमेसे एक सवाल यह था—

"पिछली शामको मैं आपकी प्रार्थना-सभामें हाजिर था जिसमें आपने दूसरी जातियोकी दो प्रार्थनाएं पढी थीं। क्या आप बतलानेकी

कृपा करेंगे कि ऐसा करनेमें आपका क्या ख्याल है ? और मजहब या धर्मसे आपका क्या मतलब है ?"

जैसा कि मै आजसे पहले भी बतला चुका हू--रैहाना तैयबजीकी सलाहसे कुछ वरस पहले कुरानकी आयते मेरी प्रार्थनामे शामिल की गई थी। उन दिनो रैहानाबहन सेवाग्राम-आश्रममे रहती थी। दूसरी प्रार्थना, डॉ० गिल्डरकी प्रेरणासे पारसी प्रार्थनाओमेसे ली गई है। आगाखा-महलमे नजरबद-की हालतमे रहते हुए मैंने जब अपना उपवास तोडा तब डाक्टर साहबने पारसी धर्मकी प्रार्थनाए पढी थी। मेरी रायमे इनको शामिल कर लेनेसे प्रार्थनाका महत्त्व बढा है। अब वह पहलेसे ज्यादा लोगोके दिलोतक पहुचती है। इससे हिदू-धर्मकी विशालता और सहिष्णुता जाहिर होती है। सवाल पूछने-वाले भाईको यह भी पूछना चाहिए था कि प्रार्थनाकी शुरुआत जापानी भाषामे गाई जानेवाली बौद्ध प्रार्थनासे क्यो होती है ? इस बौद्ध प्रार्थनाके पीछे, उसकी पाकीजगीके अनुकूल ही एक इतिहास है। जब एक भले जापानी साधु सेवाग्राम-आश्रममे ठहरे हुए थे तब रोज सवेरे इस बौद्ध प्रार्थनासे सारा सेवाग्राम गूजता था। ये जापानी सत अपने मौन और गौरवभरे स्वभावकी वजहसे सारे आश्रमवासियोके प्यारे बन गए थे।

जम्मू, ५-८-'४७

उन भाईका दूसरा सवाल यह था—

"लार्ड माउंटबेटनको पहला गवर्नर जनरल क्यो चुना गया ?"

जहातक मेरा ख्याल है, सवाल पूछनेवाले भाईने इसके कारणका सही अदाज लगाया है। इस ओहदेके लिए इतना

योग्य कोई हिंदुस्तानी नही था। हिंदुस्तान आजादी-बिलकी कल्पना करनेमे लार्ड माउंटबेटनका पूरा नहीं तो कुछ हिस्सा जरूर था, इसलिए राष्ट्रके जहाजको तूफानमेंसे सुरक्षित निकाल ले जानेमे वे आरजी सरकारके मेम्बरोंको सबसे काबिल आदमी जान पडे। इससे अगर एक तरफ अंग्रेजोंकी तारीफकी बात है तो दूसरी तरफ हिंदुस्तानके राजनीतिज्ञोंको भी इसके लिए उतना ही श्रेय दिया जाना चाहिए, जिन्होंने यह बतला दिया कि तरफदारीसे ऊपर उठनेकी उनमें योग्यता है। साथ ही उन्होंने दिखला दिया कि अभीतक जो उनके विरोधी रहे है, उनपर भरोसा करनेकी बहादुरी उनमे है।

उनका तीसरा सवाल था—

"आप इस बातके लिए राजी क्यो नहीं होते कि अल्पसंख्यक लोग अपने-अपने उपनिवेशोको छोड़ दें?"

इस बातपर राजी होनेके लिए मुझे किसीने नही कहा। मगर मुझे ऐसी किसी भी हलचलका विरोध करना चाहिए। किसी भी उपनिवेशके बहुसंख्यकोंपर अविश्वास करनेका कोई कारण नही है। और अब तो हर हालतमे, जब हिंदुस्तानमें दो सार्वभौम राज बन गए हैं, तब इनमेसे हर राजको अपने यहां रहनेवाले दूसरे राजके अल्पसंख्यकोंके प्रति उचित व्यवहार-की गारंटी देनी होगी। मगर हम उम्मीद करें कि ऐसा मौका कभी नही आएगा। मै भी मानता हू कि हर एक हकके साथ एक फर्ज जुड़ा हुआ है। ऐसा कोई हक नही जो ठीक तरहसे अदा किए हुए फर्जसे न निकलता हो।

उन भाईका चौथा सवाल है—

"क्या आप १५ अगस्तको हिंदुस्तानके आज़ाद हो जानेपर देशकी राजनीतिमें भाग लेना छोड़ देंगे ?"

पहली बात तो यह है कि हमें जो आजादी मिल रही है वह राम-राजके नजदीक ले जानेवाली नहीं है। राम-राज तो पहलेकी तरह आज भी हमसे करोडो मील दूर है। और फिर करोड़ोका जीवन ही हर हालतमे मेरी राजनीति है। उसे छोड़नेकी हिम्मत मुझमें नही है। उसे छोडनेका मतलव होगा मेरे जीवनके काम और भगवानको माननेसे इन्कारकरना। यह वहुत सभव है कि १५ अगस्तके वाद मेरी राजनीति कोई दूसरा रास्ता ले ले। लेकिन इसका फैसला तो परिस्थितिया ही करेंगी।

आखिरमें उन्होंने पूछा है—

'आपने बिहारमें काफी काम किया है; लेकिन पजाबको क्यो भुलाया ?'

इसके जवावमे मै इतना ही कह सकता हू कि मेरे पजाव न जानेका यह मतलव न लगाया जाय कि मैंने उस सूवेको भुला दिया है। फिर भी यह सवाल विलकुल ठीक है और कई वार मुझसे पूछा भी गया है। मैंने पूरी ईमानदारीसे इसका यही जवाव दिया है कि न तो मुझे पजाव जानेके लिए अपनी अंतरात्मासे कोई प्रेरणा मिली और न मेरे सलाहकारोने मुझे प्रोत्साहन दिया।

पटना जाते हुए, ट्रेनमे, ७–८–'४७

: ७ :

हलफनामेका मसविदा

श्री व्रजलाल नेहरूने 'हरिजन'म छापनेके लिए जो हलफनामेका मसविदा भेजा है, वह नीचे दिया जाता है—

इस हलफनामेपर हिंदुस्तानकी फौजी या गैर-फौजी सरकारी नौकरियोके सारे मेम्बरोको, केन्द्रकी, सूबोकी या स्थानीय नौकरियोके सारे उम्मीदवारोको, इन सरकारोके मातहत दूसरी बड़ी-बड़ी तनखाहोवाली नौकरियोके लिए अर्जी करनेवालोको और धारासभाओके मेम्बरोके साथ-साथ विधान-सभाके मेम्बरोको भी दस्तखत करने होगे।

मैं ईमानदारीके साथ यह सौगध लेता हू कि—

१. मैं हिंदुस्तानी संघका नागरिक हूं, जिसके प्रति हर हालतमें वफादार रहनेका मैं वचन देता हू।

२. मैं इस उसूलको नहीं मानता कि हिंदू और मुसलमान दो अलग राष्ट्र हैं। मेरी यह राय है कि हिंदुस्तानके सब लोग—फिर वे किसी भी जाति या धर्मके हो—एक ही राष्ट्रके अग हैं।

३. मैं अपने सारे कामो और भाषणोमें ऐसी कोशिश करूंगा, जिससे इस पुराने और पवित्र देशके सब लोगोकी एक-राष्ट्रीयताके विचारको शक्ति मिले।

४. अगर किसी समय मैं इस प्रतिज्ञाको तोड़नेका अपराधी साबित होऊं तो मुझे उस समयकी अपनी किसी भी बड़ी तनखाहकी नौकरी या ओहदेसे हटा दिया जाय।"

इस हलफनामेके शब्दोमे सुधारकी गुंजाइश हो सकती है, लेकिन अगर हम राजनैतिक मैदानमे बढनेवाले रोगसे

गुक्त होना चाहते है तो इस मसविदेके भीतर रही भावना सचमुच तारीफके लायक और अपनाने-जैसी है।

पटना जाते हुए, ट्रेनमें, ७-८-'४७

: ८ :

विद्यार्थियोंकी कठिनाइयां

सवाल—"आजकल विद्यार्थियोके तमाम मौजूदा संघोको एक राष्ट्रीय परिषद्का रूप देने, विद्यार्थियोके आंदोलनकी बुनियादको फिरसे बदलने और विद्यार्थियोंके एक संयुक्त राष्ट्रीय संघको जन्म देनेकी कोशिश हो रही है। आपकी रायमें इस नए संघका क्या मकसद होना चाहिए? आज देशमें जो नई हालतें पैदा हो गई है उनमें इस विद्यार्थी संघको कौनसे काम करने चाहिए?"

जवाब—इसमे कोई शक नही कि हिंदू, मुसलमान और दूसरे विद्यार्थियोंका एक राष्ट्रीय संघ होना चाहिए। विद्यार्थी राष्ट्रके भविष्यको बनानेवाले होते है। उनका बंटवारा नही किया जा सकता। मुझे यह कहते दु:ख होता है कि न तो विद्यार्थियोंने खुद अपने लिए कभी यह सोचा और न नेताओंने उन्हें सिर्फ अभ्यासमें ही मन लगानेका मौका दिया, ताकि वे अच्छे नागरिक बन सके। यह सडांद विदेशी हुकूमतके साथ हमारे देशमें शुरु हुई। उस हुकूमतके वारिस बननेवाले हम लोगोंने भी बीते जमानेकी गलतियोंको सुधारनेकी तकलीफ नही की। इसके अलावा, अलग-अलग सियासी पार्टियोंने

विद्यार्थियोंको अपने जालमे फँसानेकी कोशिश की, मानों वे मछलियोंके झुंड हों। और विद्यार्थी नादानीसे इस फैलाए हुए जालमें फँस गए।

इसलिए किसी भी विद्यार्थी-संघके लिए यह काम हाथमें लेना बड़ा कठिन है। लेकिन उनमें ऐसे बहादुर लोग जरूर होंगे जो इस जिम्मेदारीसे पीछे नही हटेंगे। उनका ध्येय होगा, सब विद्यार्थियोको एक संस्थाके मातहत संगठित करना। यह काम वे तबतक नही कर सकेंगे, जबतक वे सक्रिय राज-नीतिसे बिलकुल अलग रहना नही सीखेंगे। विद्यार्थीको चाहिए कि वह ऐसे कई सवालोका अध्ययन करे जिनका हल किया जाना जरूरी हो। उसके काम करनेका वक्त पढ़ाई खतम करनेके बाद ही आता है।

सवाल—"आज विद्यार्थियोके संघ राष्ट्र-निर्माणके काममें अपनी शक्ति लगानेके बनिस्बत राजनैतिक मामलोंपर प्रस्ताव पास करनेकी तरफ ज्यादा ध्यान देते हैं। इसका एक कारण यह है कि देशकी राजनैतिक पार्टियां अपना मतलब निकालनेके लिए विद्यार्थियोकी संस्थाओको हथियानेकी कोशिश करती रही है। हमारी आजकी फूट भी इस राजनैतिक दलबंदीके कारण ही है। इसलिए हम कोई ऐसा तरीका काममें लाना चाहते है जिससे विद्यार्थियोके नए राष्ट्रीय संघमें दलबंदी और फूटके विचार फिर न फैल सकें। क्या आप यह सोचते है कि विद्यार्थियोंके संघ राजनीतिसे बिल्कुल अलग रह सकते है? अगर नहीं तो आपकी रायमें विद्यार्थीसंघोंको देशकी राजनीतिमें किस हदतक दिलचस्पी लेनी चाहिए?"

जवाब—कुछ हदतक इस सवालका जवाब ऊपर दिया जा

चुका है। विद्यार्थियोको सक्रिय राजनीतिसे विलकुल अलग रहना चाहिए। यह देशके एकतरफा विकासकी निशानी है कि तमाम पार्टियोने अपना मतलव पूरा करनेके लिए ही विद्यार्थियोंका उपयोग किया है। शायद ऐसी हालतमें यह लाजिमी भी था, जव कि शिक्षाका एकमात्र ध्येय गुलामीसे चिपटे रहनेवाले गुलामोकी एक जाति पैदा करना था। मुझे उम्मीद है कि यह काम अव खतम हो गया। आज विद्यार्थियोका पहला काम उस शिक्षापर पूरी तरह विचार करना है जो आजाद राष्ट्रके वच्चोको दी जानी चाहिए। आजकी शिक्षा तो हरगिज ऐसी नही है। मेरे लिए यहा इस सवालपर विचार करना जरूरी नही कि वह कैसी होनी चाहिए। मै तो सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि विद्यार्थी अपने-आपको इस धोखेमे न रखे कि तालीमके सवाल पर हर पहलूसे सोचना और उसकी योजना वनाना सिर्फ यूनिवर्सिटी सीनेटके मेम्वरोका ही काम है। उन्हे अपने अदर सोचने-विचारनेकी शक्ति वढानी चाहिए। यहां मै इस वातकी सलाह तो दे ही नही सकता कि विद्यार्थी हडतालो या दूसरी इसी तरहकी हलचलोके दवावसे यह हालत पैदा कर सकते है। उन्हे तालीमके मौजूदा ढगकी रचनात्मक और जाग्रत टीका करके जन-मत तैयार करना चाहिए। सीनेटके मेम्वर पुराने ढंगसे पले-पुसे है और शिक्षित हुए है। इसलिए वे इस दिशामे जल्दी-जल्दी आगे नही वढ सकते। लेकिन यह सच है कि जागृति पैदा करके उनसे यह काम कराया जा सकता है।

सवाल—"आज ज्यादातर विद्यार्थी राष्ट्रीय सेवामें दिलचस्पी नहीं

लेते। उनमेंसे बहुतसे तो पश्चिमकी फैशनेबल आदतोके गुलाम बन रहे हैं और अधिकाधिक संख्यामें शराब पीने वगैरहकी बुरी आदतोके शिकार हो रहे है। आजादीसे किसी विषयपर सोचनेको न तो उनमें काबलियत है, न इच्छा। हम इन सारी समस्याओको हल करना चाहते है और नौजवानोमें उच्च चरित्र, निजाम और काबलियत पैदा करना चाहते हैं।"

जवाब—इसमे विद्यार्थियोकी मौजूदा अस्थिर मनोवृत्तिका वर्णन है। जब शात वातावरण पैदा होगा और विद्यार्थी आदोलन करना छोडकर गभीरतासे अपनी पढाईमे जुट जायगे तब उनकी यह हालत नही रहेगी। विद्यार्थीकी जिदगीकी जो सन्यासीकी जिदगीसे तुलना की गई है वह ठीक है। उसे सादा रहन-सहन और ऊचे विचारकी जीती-जागती मूर्ति होना चाहिए। उसे निजाम या अनुशासनका अवतार होना चाहिए। विद्यार्थीका आनद उसकी पढाईमे है। जब विद्यार्थी अपनी पढाईको लाजमी टैक्सके रूपमे देखना छोड देता है तब वह जरूर उसको सच्चा आनद देती है। विद्यार्थीके लगातार अधिकाधिक ज्ञान हासिल करते जानेसे बढ़कर उसके लिए दूसरा आनद और क्या हो सकता है?

पटना जाते हुए, ट्रेनमे, ७–८–'४७

: ६ :

घुड़दौड़की लत

नीचे दिया हुआ अश 'हरिजनबधु' मे छपे एक गुजराती पत्रका सार है—

"बरसातके मौसममें पूनामें घुड़दौड़ होती है। तीन स्पेशल गाड़ियां हर रोज पूना जाती हैं और वापिस आती हैं। और यह तब होता है जब गाड़ियोमें जगह नहीं मिलती और कामकाजी लोगोको मुसाफिरोसे ठसाठस भरी हुई गाड़ियोमें सफर करना पड़ता है। मुसाफिर अक्सर पायदानोपर लटके जाते हैं। नतीजा यह होता है कि कभी-कभी प्राण-घातक दुर्घटनाएं हो जाती हैं। एक बात और भी है, और वह यह कि जब पेट्रोलकी सब जगह कमी है तब अतिरिक्त मोटरगाड़ियां भी बम्बईसे पूना दौड़ती हैं। क्या ये मुसाफिर बम्बईमें अपना हमेशाका राशन नहीं लेते ? क्या इनको स्पेशल गाड़ियोमें और घुड़दौड़के मैदानमें नाश्ता नहीं मिलता ?

इसपरसे मेरे मनमें सिविल सर्विसकी जांच करनेकी बात पैदा होती है। जिन लोगोके बुरे इंतजामकी हम पहले निंदा किया करते थे, क्या वे ही लोग आज देशका राजकाज नहीं चला रहे हैं ? हमारी आज क्या हालत हो रही है ? हमें जरूरतका अनाज और कपड़ा भी मयस्सर नहीं होता। और हम अपनेको खर्चीले खेल-तमाशोमें फँसा हुआ पाते हैं !"

मैं अक्सर घुड़दौड़की बुराइयोके बारेमे लिख चुका हू। मगर उस वक्त मेरी बातपर कोई ध्यान नही देता था। विदेशी शासक इस बुरी आदतको पसद करते थे और उन्होंने इसे एक किस्मकी अच्छाईका जामा पहना दिया था। मगर अब उस गंदी आदतसे चिपके रहनेकी कोई वजह नही है। या कही यह तो न हो कि हम विदेशी हुकूमतकी बुराइयोको तो बनाए रखे और उसकी अच्छाइया उसके साथ ही खत्म हो जाएं ?

पत्र लिखनेवाले भाई सिविल सर्विसके बारेमे जो कहते है, उसमे बहुत कुछ सचाई है। वह एक ऐसी सस्था है जिसके आत्मा नही है। वह अपने मालिकके रग-ढगपर चलती है।

इसलिए अगर हमारे नुमाइंदे सचेत रहे और हम उनपर अपना कर्त्तव्य-पालन करनेके लिए जोर दे तो सिविल सर्विसके जरिए बहुत कुछ काम किया जा सकता है। आलोचना किसी भी जनतन्त्रीय सरकारका भोजन है। मगर वह रचनात्मक और समझदारीभरी होनी चाहिए। जन-आंदोलनकी शुरुआतमे काग्रेस अपनी जिस बुनियादी पवित्रताके लिए मशहूर थी, उसपर ही जनताकी आशा टिकी हुई है। और अगर हमे जिदा रहना है तो काग्रेसमे वह पवित्रता फिरसे लौटानी होगी।

पटना जाते हुए, ट्रेनमे, ७-८-'४७

: १० :

चमत्कार या संयोग ?

शहीदसाहब सुहरावर्दी और मै बेलियाघाटाके एक मुस्लिम मजिलमे साथ-साथ रहते है। कहा जाता है कि यहा दगेमे मुसलमानोको नुकसान पहुचा है। हम १३ अगस्त, बुधवारको इस घरमे आए और १४ अगस्तको ऐसा मालूम हुआ मानो यहाके हिदुओ और मुसलमानोमे कभी कोई अदावत या दुश्मनी थी ही नही। हजारोकी तादादमे वे एक-दूसरेसे गले मिलने लगे और निडर बनकर उन जगहोसे गुजरने लगे जिन्हे एक या दूसरी पार्टी खतरनाक समझती थी। सचमुच मुसलमान भाई अपने हिदू भाइयोको मसजिदोमे ले गए और

हिंदू अपने मुसलमान भाइयोको मदिरोमे। दोनोने एक साथ 'जय हिंद' और 'हिंदू-मुस्लिम एक हो' के नारे लगाए। जैसा कि मैने ऊपर कहा है, हम एक मुसलमानके घरमे रहते है और मुसलमान सेवक और सेविकाएं हमारे सुख-सुभीतोंका ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान रखती है। मुसलमान स्वयंसेवक हमारा खाना बनाते है। खादी प्रतिष्ठानसे बहुतसे लोग मेरी सेवाके लिए आना चाहते थे, लेकिन मैने उन्हे रोक दिया। मैने यह पक्का इरादा कर लिया था कि मुसलमान भाई और बहने जो कुछ भी सुख-सुभीते हमे दे सकेगे, उन्हीसे हमे पूरा सतोष मानना चाहिए। और, मुझे यह कहना चाहिए कि अपने इस इरादेसे मुझे जरा भी नुकसान नही हुआ। मकानके अहातेमे 'जय हिंद' और 'हिंदू-मुस्लिम एक हो' के नारे लगाने-वाले अनगिनत हिंदू-मुसलमानोका ताता वधा रहता है। मै तो यहातक सुनता हू कि भाईचारेका उत्साह लगातार वढता जा रहा है।

इसे चमत्कार कहा जाय या संयोग ? इसको किसी भी नामसे क्यो न पुकारा जाय यह तो साफ है कि चारो तरफसे इसका जो श्रेय मुझे दिया जाता है उसके लायक मै नही हू। तव क्या शहीदसाहवको इसका श्रेय है ? उन्हे भी इसका श्रेय नही मिलना चाहिए। एकाएक होनेवाला यह भारी फेरफार एक या दो आदमियोका काम नही है। हम तो भग-वानके हाथके खिलौने है। वह हमे अपने इशारेपर नचाता है। इसलिए आदमी ज्यादा-से-ज्यादा यही कर सकता है कि वह इस नाचमे कोई रुकावट न डाले और अपने भगवानकी

इच्छाको अच्छी तरह पूरी करे। इस तरह विचार करनेपर यह कहा जा सकता है कि इस चमत्कारमे भगवानने हम दोनोको अपना साधन बनाया है। मैं अपने आपसे यही पूछता हूं कि क्या मेरा बचपनका सपना बुढापेमे पूरा होगा? देखूं क्या होता है।

जो भगवानमे पूरी श्रद्धा रखते है उनके लिए न तो यह चमत्कार है और न सयोग। घटनाओंका सिलसिला यह साफ बताता है कि दोनों जातिया, अनजानमे ही, इस भाई-चारेके लिए तैयार की जा रही थी। इस जगह हम दोनोके पहुंच जानेसे देखनेवालोको आनदसे भरी इस घटनाके लिए हमे श्रेय देनेका मौका मिल गया।

कुछ भी हो, खुशीसे पागल बना देनेवाली ये घटनाएं मुझे खिलाफत आदोलनके शुरुआतके दिनोंकी याद दिलाती है। तब जनतामे भाईचारेकी भावना नए अनुभवके रूपमे फूट पडी थी। इसके अलावा, तब हमारे खिलाफत और स्वराजके आदर्श एक-दूसरेसे जुड़े हुए थे। आज उस तरहकी कोई बात नही है। हमने आपसी नफरतका जहर पी लिया है। इसलिए भाईचारेका यह अमृत हमे बहुत ज्यादा मीठा लगना चाहिए और उसकी मिठास कभी कम न होनी चाहिए।

आजके नारोमे हिदुओ और मुसलमानोके मुहसे एक साथ 'हिदुस्तान-पाकिस्तान जिदाबाद' का स्वर भी सुनाई देता है। मेरे विचारसे यह बिलकुल ठीक है। पाकिस्तानको मजूर करनेका कोई भी कारण क्यो न रहा हो, तीन पार्टियोने उसे मान लिया है। तब अगर दो पार्टिया एक दूसरेकी

दुश्मन न हों—और यहा तो वे साफ तौरपर एक-दूसरीकी दुश्मन नही मालूम होती—तो ऊपरका नारा लगानेमे कोई बुराई नही है। अगर दोनों जातिया सचमुच दोस्त बन जाए तो दोनो राज्योकी लंबी जिंदगीकी कामना न करना बेवफाई होगी।

बेलियाघाटा, १६-८-'४७

: ११ :

हिंदुस्तानी गवर्नर

यहां 'इंडिया' शब्दके मानोमे हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनो शामिल है। शब्दोका ठीक-ठीक अर्थ किया जाय तो हिंदुस्तानसे हिंदुओंका देश और पाकिस्तानसे मुसलमानोका देश समझा जा सकता है। मेरी रायमे दोनो शब्दोका ऐसा इस्तेमाल कायदेके खिलाफ है। इसलिए मैंने यहां जान-बूझकर 'हिंदुस्तान' शब्दका इस्तेमाल किया है।

ब्रिटिश जुएसे आजादी दिलानेवाली कांग्रेसका जो खास जलसा १९२०मे कलकत्तेमे हुआ था, उसमे खिलाफत-स्वराज-असहयोगका प्रस्ताव पास हुआ था। वह हिंदू और मुसलमान दोनोके लिए था। उसका मकसद लोगोमे आत्म-शुद्धिकी भावना पैदा करना था, जिससे अच्छी और बुरी ताकतोके बीच असहयोग किया जा सके। इसलिए,

१. हिंदुस्तानी गवर्नरको चाहिए कि वह खुद पूरे संयमका

पालन करे और अपने आसपास सयमका वातावरण खडा करे। इसके बिना शराब-बदीके बारेमे सोचा भी नही जा सकता।

२ उसे अपनेमे और अपने आसपास हाथ-कताई और हाथबुनाईका वातावरण पैदा करना चाहिए, जो हिंदुस्तानके करोडो गूगोके साथ उसकी एकताकी जाहिरा निशानी हो, 'मेहनत करके रोटी कमाने' की जरूरतका, और सगठित हिंसाके खिलाफ—जिसपर आजका समाज टिका हुआ मालूम होता है—सगठित अहिसाका जीता-जागता प्रतीक हो।

३ अगर गवर्नरको अच्छी तरह काम करना है तो उसे लोगोकी निगाहोसे बचे हुए, फिर भी सबकी पहुचके लायक, छोटेसे मकानमे रहना चाहिए। ब्रिटिश गवर्नर स्वभावसे ब्रिटिश ताकतको दिखाता था। उसके और उसके लोगोंके लिए सुरक्षित महल बनाया गया था—ऐसा महल जिसमे वह और उसके साम्राज्यको टिकाए रखनेवाले उसके सेवक रह सके। हिंदुस्तानी गवर्नर राजा-नवाबो और दुनियाके राज-दूतोका स्वागत करनेके लिए थोडी शान-शौकतवाली इमारतें रख सकते है। गवर्नरके मेहमान बननेवाले लोगोको उसके व्यक्तित्व और आसपासके वातावरणसे 'ईवन अण्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय)—सबके साथ समान बरताव—की सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिए। उसके लिए देशी या विदेशी महगे फर्निचरकी जरूरत नही। 'सादा जीवन और ऊचे विचार' उसका आदर्श होना चाहिए। यह सिर्फ उसके दरवाजेकी ही शोभा न बढाए, बल्कि उसके रोजके जीवनमे भी दिखाई दे।

४. उसके लिए न तो किसी रूपमे छुआछूत हो सकती है

और न जाति, धर्म या रंगका भेद। हिंदुस्तानका नागरिक होनेके नाते उसे सारी दुनियाका नागरिक होना चाहिए। हम पढ़ते है कि खलीफा उमर इसी तरह सादगीसे रहते थे, हालांकि उनके चरणोपर लाखो-करोडोकी दौलत लोटती रहती थी। इसी तरह पुराने जमानेमे राजा जनक रहते थे। इसी सादगीसे ईटनके स्वामी, जैसा कि मैंने उन्हे देखा था, अपने भवनमे ब्रिटिश द्वीपोके लार्ड और नवावोके लडकोंके वीच रहा करते थे। तव क्या करोडो भूखोके देश हिंदुस्तानके गवर्नर इतनी सादगीसे नही रहेगे ?

५ वह जिस प्रातका गवर्नर होगा, उसकी भाषा और हिंदुस्तानी वोलेगा, जो हिंदुस्तानकी राष्ट्रभाषा है और नागरी या उर्दू लिपिमे लिखी जाती है। वह न तो सस्कृत शब्दोसे भरी हुई हिंदी है और न फारसी शब्दोसे लदी हुई उर्दू। हिंदुस्तानी दरअसल वह भाषा है, जिसे विध्याचलके उत्तरमें करोडो लोग बोलते है।

हिंदुस्तानी गवर्नरमे जो-जो गुण होने चाहिए उनकी यह पूरी सूची नही है। यह तो सिर्फ मिसालके तौरपर दी गई है।

हम आशा करे कि वे अंग्रेज भी, जिन्हे हिंदुस्तानी नुमाइंदोने गवर्नर चुना है और जिन्होने हिंदुस्तान और उसके करोड़ोकी वफादारीकी सौगध ली है, वही सादा जीवन विताने-की भरसक कोशिश करेंगे, जिसकी हिंदुस्तानी गवर्नरसे आशा की जाती है। वे ब्रिटेनके उन अच्छे-से-अच्छे गुणोका प्रदर्शन करेंगे, जो वह हिंदुस्तान और दुनियाको दे सकता है।

कलकत्ता, १७–८–'४७

: १२ :

भगवान भला है

भगवान उसी अर्थमे भला नही है, जिसमे इन्सान भला है। इन्सान तुलनामे भला है। वह बुरेके बनिस्बत-भला ज्यादा है। लेकिन भगवान तो भला-ही-भला है। उसमे बुराईका नाम भी नही है। भगवानने इन्सानको अपनी ही तरह बनाया। लेकिन हमारे दुर्भाग्यसे इन्सानने भगवानको अपने-जैसा बना डाला है। इस घमंडसे मनुष्य-जाति दु.खो और कठिनाइयोके समुद्रमे जा पडी है। भगवान सबसे बड़ा रसायन-शास्त्री है। वह जहां मौजूद रहता है, वहां लोहा और कचरा भी खरा सोना बन जाता है। उसी तरह सारी बुराई भलाईमें बदल जाती है।

फिर, भगवान है, लेकिन हमारी तरह नही। उसके प्राणी मरनेके लिए ही जीते है। लेकिन भगवान तो खुद जीवन है। इसलिए भलाई, अपने हर मानीमे, भगवानका गुण नही है। भलाई भगवान ही है। भगवानसे अलग जिस भलाईकी कल्पना की जाती है, वह बेजान चीज है और वह तभी-तक टिकती है जबतक उससे हमे फायदा पहुचता है। यही बात सारे सदाचारोके बारेमे भी सच है। अगर उन्हे हमारे जीवनमे जिंदा रहना है तो हमे यह सोचकर अपनेमे उन्हे बढ़ाना होगा कि भगवानसे उनका संबध है। वे भगवानके दिए हुए है। हम भले बनना चाहते है, क्योकि हम भगवानको पाना और उसमे मिल जाना चाहते है।

दुनियाके सारे निर्जीव नैतिक सिद्धांत बेकार है, क्योंकि भगवानसे अलग उनकी कोई हस्ती नही है—वे बेजान है। भगवानके प्रसादके रूपमे वे जानदार बनकर आते हैं। वे हमारे जीवनके अग बन जाते है और हमे ऊंचा उठाते है। इसके खिलाफ, भलाईके बिना भगवान भी बेजान है। हम अपनी झूठी कल्पनाओमे ही उसे जिदा बनाते है—उसमे प्राण फूकनेकी कोशिश करते है।
कलकत्ता, १७–८–'४७

: १३ :

गायको कैसे बचाया जाय ?

हिंदू-धर्ममे और हिंदुस्तानी जीवनकी आर्थिक व्यवस्थामे गायकी क्या जगह है, इसके बारेमे लोग बहुत ही कम जानते है। हिंदुस्तान विदेशी हुकूमतसे आजाद तो हो गया, लेकिन साथ ही देशकी सारी पार्टियोकी एक रायसे उसके दो टुकडे भी हो गए है। इससे आम लोगोंमे ऐसा विश्वास पैदा हो गया है कि वे एक हिस्सेको हिंदू हिंदुस्तान और दूसरेको मुस्लिम हिंदुस्तान कहने लगे है। इस विश्वासका समर्थन नही किया जा सकता। फिर भी दूसरे सारे झूठे विश्वासोकी तरह हिंदू हिंदुस्तान और मुस्लिम हिंदुस्तानका यह विश्वास भी बड़ी कठिनाईसे दूर होगा। सच बात तो यह है कि जो कोई अपने आपको इस देशकी सतान कहते है और है, वे सब हिंदुस्तानी

संघ और पाकिस्तानके एक-से नागरिक है, भले ही वे किसी भी धर्म या रगके हों।

फिर भी, प्रभावशाली हिंदू बहुत बडी तादादमे यह झूठा विश्वास करने लगे है कि हिंदुस्तानी सघ हिंदुओंका है और इसलिए उन्हे कानूनके जरिये अपने इस विश्वासको गैर-हिंदुओसे भी जबरन मनवाना चाहिए। इसलिए यूनियनमें गायोंकी हत्याको रोकनेका कानून बनवानेके लिए सारे देशमे जोशकी एक लहर-सी फैल रही है।

ऐसी हालतमे—जिसकी नीव मेरी रायमे अज्ञान है—हिंदुस्तानमे दूसरो-जैसा ही गायका भक्त और समझदार प्रेमी होनेका दावा करते हुए मुझे अच्छे-से-अच्छे ढगसे लोगोके इस अज्ञानको दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिए।

सबसे पहले हम यह समझ ले कि धार्मिक मानोमे गायकी पूजा बडे पैमानेपर सिर्फ गुजरात, मारवाड, युक्तप्रांत और बिहारमे ही होती है। गुजराती और मारवाड़ी लोग साहसी व्यापारी होते है। इसलिए वे इस बारेमे बडी-से-बडी आवाज उठानेमे कामयाब हुए है। लेकिन गो-हत्याके खिलाफ आवाज उठानेके साथ-ही-साथ वे अपनी व्यापारी बुद्धिको हिंदुस्तानके पशु-धनकी रक्षाके बडे मुश्किल सवालको हल करनेमे नही लगा रहे है।

अपने धर्मके आचार-विचारको कानूनके जरिये दूसरे धर्मके लोगोपर लादना बिलकुल गलत चीज है।

अगर गो-रक्षाके सवालको सिर्फ आर्थिक आवश्यकताकी निगाहसे ही देखा जाय तो वह बडी आसानीसे हल किया जा

सकता है, लेकिन शर्त यही है कि उसपर सिर्फ आर्थिक आधारसे ही विचार किया जाय। उस हालतमे दूध न देनेवाले सारे मवेशी, अपने पालनेके खर्चसे भी कम दूध देनेवाली गाये, और बूढ़े व बेकार जानवर बिना किसी हिचकिचाहटके मार डाले जाने चाहिए। इस बेरहम आर्थिक व्यवस्थाकी हिंदुस्तानमे कोई जगह नही है, हालाकि आपसी विरोधवाले मतोके इस देशके लोग कई कठोर काम करनेके अपराधी हो सकते है और सचमुच है।

अब सवाल यह है कि जब गाय अपने पालन-पोषणके खर्चसे भी कम दूध देने लगती है या दूसरी तरहसे नुकसान पहुचानेवाला बोझ बन जाती है तब बिना मारे उसे कैसे बचाया जा सकता है ? इस सवालका जवाब थोडेमे इस तरह दिया जा सकता है।

१ हिंदू गाय और उसकी संतानकी तरफ अपना फर्ज पूरा करके उसे बचा सकते है। अगर वे ऐसा करे, तो हमारे जानवर हिंदुस्तान और दुनियाके गौरव बन सकते है। आज इससे बिलकुल उलटा हो रहा है।

२. जानवरोंके पालन-पोषणका विज्ञान सीखकर गायकी रक्षा की जा सकती है। आज तो इस काममे पूरी अधाधुधी चलती है।

३. हिंदुस्तानमे आज जिस बेरहमी तरीकेसे बैलोंको बधिया बनाया जाता है, उसकी जगह पश्चिमके हमदर्दी-भरे और नरम तरीके काममे लाकर इसे बचाया जा सकता है।

४. हिदुस्तानके सारे पिजरापोलोका पूरा-पूरा सुधार किया जाना चाहिए। आज तो हर जगह पिंजरापोलका इतजाम ऐसे लोग करते है जिनके पास न कोई योजना होती है और न वे अपने कामकी जानकारी ही रखते है।

५. जब ये महत्त्वके काम कर लिए जायंगे तो मुसलमान खुद, दूसरे किसी कारणसे नही तो अपने हिंदू भाइयोके खातिर ही, मांस या दूसरे मतलबके लिए गायको न मारनेकी जरूरत समझ लेगे।

पढ़नेवाले यह देखेंगे कि ऊपर बताई हुई जरूरतोके पीछे एक खास चीज है। वह है अहिसा, जिसे दूसरे शब्दोंमे प्राणी-मात्रपर दया कहा जाता है। अगर इस सबसे बड़े महत्त्वकी बातको समझ लिया जाय तो दूसरी सब बातें आसान बन जाती है। जहा अहिसा है, वहां अपार धीरज, भीतरी शांति, भले-बुरेका ज्ञान, आत्म-त्याग और सच्ची जानकारी भी है। गो-रक्षा कोई आसान काम नही है। उसके नामपर देशमे बहुत पैसा बरबाद किया जाता है। फिर भी अहिसाके न होनेसे हिंदू गायके रक्षक बननेके बजाय उसके नाश करनेवाले बन गए है। गो-रक्षाका काम हिदुस्तानसे विदेशी हुकूमतको हटानेके कामसे भी ज्यादा कठिन है।

कलकत्ता, २२-८-'४७

[नोट: कहा जाता है कि औसतन हिदुस्तानकी गाय रोजाना २ पौडके करीब दूध देती है, जब कि न्यूजीलैंडकी १४ पौड, इग्लैंडकी १५ पौड और हालैंडकी २० पौड दूध

देती हैं। जैसे-जैसे दूधकी पैदावार बढती है, वैसे-वैसे तदुरुस्तीके आकड़े भी बढ़ते है।]

२३–८–'४७

: १४ :

क्या 'हरिजन'की जरूरत है ?

मुझे लगता है कि अब चूकि अंग्रेजी हुकूमतसे हिंदुस्तानको आजादी मिल गई है, इसलिए 'हरिजन' अखबारोकी अब और ज्यादा जरूरत नही है। मेरे विचार जैसे है वैसे ही सदा रहेंगे। आजाद हिंदुस्तानकी पुनरंचनाकी योजनामे इस बातका ध्यान रखनेकी जरूरत है कि उसके देहात आजकी तरह उसके शहरोपर निर्भर न रहे, बल्कि इससे उलटे, शहरोका बना रहना सिर्फ देहातोके लिए और देहातोको फायदा पहुंचानेके लिए ही हो। इसलिए केंद्रकी गौरवभरी जगहपर चरखेको रखकर उसके आसपास देहातोको जीवन देनेवाले गृह-उद्योगो-को सजाया जाय। मगर जान पडता है कि इस चीजको सबसे पीछे ढकेला जा रहा है। यही बात दूसरी कई चीजोके बारेमे कही जा सकती है, जिनके मैं मोहक चित्र खीचा करता था। मैं और ज्यादा दिनोतक ऐसा करनेका साहस नही कर सकता। पहलेसे ज्यादा बडे तूफानमे आज मेरी नाव चल रही है। यह भी कहा जा सकता है कि मेरे ठहरनेकी कोई एक निश्चित जगह नही है। 'हरिजन'के पृष्ठ ज्यादातर

मेरे प्रार्थना-सभाके बादके भाषणोसे ही भरे रहते है। मेरे खुदके लिखे हुए मजमूनका औसत तो उसमे हर हफ्ते सिर्फ डेढ कॉलम ही होता है। यह जरा भी संतोषकी बात नही है। इसलिए मै चाहता हूं कि 'हरिजन' साप्ताहिकोंके पाठक मुझे अपनी साफ राय दे कि वे अपनी राजनैतिक और आध्यात्मिक भूख बुझानेके लिए सचमुच अपने 'हरिजन' साप्ताहिककी जरूरत महसूस करते है या नही। पाठक जिस किसी भाषाके 'हरिजन' साप्ताहिकके ग्राहक हो, उसी भाषामे सपादक, 'हरिजन' अहमदाबादके नामपर अपने जवाब भेजे और अगर वे चाहते है कि 'हरिजन' निकलता रहे तो वे सक्षेपमे मुझे यह बतला दे कि वे ऐसा क्यो चाहते है। जिस लिफाफेमे वे अपना जवाब भरकर भेजे, उसकी बाई ओरके ऊपरके कोनेमे यह जरूर लिखे—'हरिजनके बारेमे।'

कलकत्ता, २४–८–'४७

: १५ :

विद्यार्थियोंके बारेमें

एक भाई लिखते है :

"विद्यार्थियों और उनके संघोके बारेमें आपने 'हरिजन' में इस समय बड़े मौकेकी चर्चा शुरू की है। स्वर्गीय एच० जी० वेल्सने एक जगह विद्यार्थियोके लिए 'अंडरग्रेज्युएट इंटेलिजेंस' शब्दका इस्तेमाल किया है। कच्ची समझवाले विद्यार्थियोका बेजा फायदा उठानेका काम

इस नए जमानेमें भयंकर नुकसान करता है। वह विद्यार्थियोंको पढ़ाईसे दूर हटाता है और आजकी विषम परिस्थितिमें अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारता है।

"आपके जिस लेखका मैंने ऊपर जिक्र किया है, उसके बारेमें सवाल पूछा जा सकता है: "क्या गांधीजीने ही पहले-पहल विद्यार्थियोंको राजनीति-की तरफ नहीं खींचा? फिर आज वह ऐसा कैसे कहते हैं?" मैं जानता हूं कि यह सच नहीं है; लेकिन यह जरूरी है कि आप अपने विचारोंको फिरसे जांचें।

"दूसरी बात यह है कि विद्यार्थियोंके संघ क्या करें? इसे कुछ विस्तारसे आपको बताना होगा। देशमें उनका एक संघ किस उद्देश्यसे बने? आज तो आप जानते हैं कि विद्यार्थी-संघ राजनैतिक जीवनमें पांव रखनेके साधन समझे जाते हैं। कुछ लोग उनसे यही बेजा फायदा उठाते हैं। सिर्फ विद्याके लिए ही संघ बनाया जाय तो उसके लिए क्या करना चाहिए, यह आप लिखें तो बड़ा लाभ हो।

"गुजरातके लिए नई यूनिवर्सिटीका विचार करनेके लिए बम्बई-सरकारने एक कमेटी कायम की है। उसके बारेमें लोग आपके विचार जानना चाहते हैं। अब आपको इसके लिए भी समय निकालना होगा।"

कच्ची बुद्धि कैसा नुकसान करती है यह तो मैंने इसी हफ्तेमें देख लिया। विद्यार्थियोंकी एक खास सभामें मुझे यहांके वाइसचांसलर ले गए थे। विद्यार्थियोंने बिना विचारे शहीदसाहबके बारेमें बदतमीजी दिखाई। बादमें वे ठीक रास्तेपर आए और पछताने लगे। और उन्होंने यह बात कर दिखाई कि सच्चा रास्ता दिखानेवाला मिले तो वह उनकी कच्ची बुद्धिका अच्छा इस्तेमाल करके उसे कैसे पक्की

बना देता है। यह चीज इस अंकमे[1] छपे मेरे प्रार्थनाके वादके भापणोसे साफ समझमे आ जायगी।

'हरिजनबधु'मे अग्रेजीसे गुजरातीमे तरजुमा किया गया होगा। मुझे आशा है कि यह तरजुमा विलकुल ठीक होगा। अग्रेजी, मेरे हिंदुस्तानीमे दिए गए भापणका तरजुमा है। असल हिदुस्तानी तो कौन भेज सकता है? ऐसी सहूलियत मै अपने आप खो वैठा हू। प्यारेलालजी और सुशीलावहन ज्यादा उपयोगी सेवामे लगे हुए है। राजकुमारीकी सेवा और मदद तो मुझे महीनोसे नही मिल रही है। उनका उपयोग भी आज ज्यादा वडे काममे हो रहा है।

आखिरी सवाल मै पहले लेता हू:

विद्यार्थियोंका एक ही सघ वने तो उसमेंसे वडी भारी ताकत पैदा होगी और वह देशकी वहुत सेवा कर सकेगा। उसका ध्येय एक ही हो सकता है देशकी सेवा करना, पैसा कमाना नही। अगर विद्यार्थी ऐसा करेगे तो उनका ज्ञान खूव वढेगा। हलचलोमे सिर्फ वे ही लोग हिस्सा ले, जो पढ़ाई खतम कर चुके है। पढते समय तो विद्यार्थियोको अपना ज्ञान वढानेका काम ही करना चाहिए। आजकी शिक्षा देशके हितको नुकसान पहुचानेवाली है। यह दिखाना सभव है कि आजकी शिक्षासे देशको थोडा फायदा हुआ और हो रहा है; लेकिन मेरी नजरमे वह कुछ नही है। कोई उससे

---

[1] ७ सितम्बर १९४७ के 'हरिजनबंधु'में प्रकाशित २९ अगस्त १९४७ को कलकत्तेमें दिया गया भाषण।

धोखा न खाय। उसके फायदेमंद होनेकी सबसे बड़ी कसौटी है कि आज खाने और कपडेकी जो भारी तंगी है उसमें—खुराक और कपडेकी पैदावारमें—क्या यह शिक्षा कोई मदद पहुंचाती है ? आजकी नादानीभरी हत्या और खूरेंजीको दबानेमें वह क्या हिस्सा लेती है ? हर देशकी पूरी शिक्षा उसे तरक्की-की तरफ ले जानेवाली होनी चाहिए। इससे कौन इन्कार करेगा कि हिंदुस्तानमे दी जानेवाली शिक्षासे यह उद्देश्य पूरा नही होता ? इसलिए विद्यार्थियोके सघका एक ध्येय यह होना चाहिए कि वे आजकी शिक्षाके दोष खोजे और अपनेमे पाए जानेवाले उन दोषोको दूर करे। अपने सही कामसे वे शिक्षाके महकमोको अपने विचारका बना सकेंगे। अगर विद्यार्थी ऐसा करेंगे तो वे राजनैतिक दलबदीमे नहीं फंसेंगे। संघकी नई योजनामे रचनात्मक कामको कुदरती तौर-पर उचित जगह मिलेगी। इससे देशकी राजनीति शुद्ध बनी रहेगी।

अब मैं पहला सवाल लेता हूं:

आजादीकी लडाईके समय मैंने विद्यार्थियोकी शिक्षाके बारेमे क्या कहा था वह भुला दिया गया मालूम होता है। स्कूलो और कालेजोमे रहकर मैंने विद्यार्थियोको राजनीतिमे पडनेकी बात नही सिखाई थी। मैंने तो उन्हे अहिंसक असहयोग सिखाया था, स्कूल और कालेज खाली करके देश-सेवाके काममे लगना सिखाया था। नए विद्यापीठ और नए कालेज या स्कूल खोलनेकी कोशिश की थी। बदकिस्मतीसे चालू शिक्षाका जाल इतना मजबूत था कि उसमेंसे थोडे ही लोग

बाहर निकल पाए थे। इसलिए यह कहना ठीक नही कि पहले मैंने विद्यार्थियोंको राजनीतिमे खीचा था। इसके सिवा जब मैं २० सालतक दक्षिण अफ्रीकामे रहकर १९१५मे वापिस आया तब स्कूलो और कालेजोमें पढते हुए भी, विद्यार्थी देशकी राजनीतिकी तरफ खिच चुके थे। उस समय शायद इसके सिवा दूसरा कुछ करना असभव था। विदेशी शासकोंने देशकी सारी रचना ऐसी बना रखी थी कि देशको गुलामीके फंदेसे छुडाने लायक राजनीतिमे कोई पड ही नही सकता था। उन्होने शिक्षाका सारा काम अपने हाथमे रखकर करोडोको अज्ञानके अधेरेमे पडे रहने दिया और विदेशी हुकूमतको मजबूत बनाया। इससे विदेशी हुकूमतके कायम किए हुए स्कूलो और कालेजोके सिवा दूसरा कोई साधन देशभक्त कार्यकर्ताओके सामने रह नही गया था। इस साधनसे कहां-तक बेजा फायदा उठाया गया है, इसकी यहा जांच करनेकी जरूरत नही।

कलकत्ता, ३०-८-'४७

: १६ :

अहिंसा सफल या असफल

सवाल—जब आप नोआखालीमें थे तब अक्सर कहा करते थे कि अगर मुझे अपने मिशनमें कामयाबी न मिली तो वह मेरी अपनी अहिंसाकी नाकामयाबी—होगी, खुद अहिंसाकी नहीं। यहां कलकत्तेमें जो सफलता

मिली है उसे देखते हुए क्या आप सोचते हैं कि आपकी अहिंसा कामयाब हुई है या कामयाबीके रास्तेपर है ?

जवाब—अहिंसाके बारेमे मेरे विचारोका यह सही बयान है। अहिंसा हमेशा अचूक होती है। इसलिए जब वह नाकाम हुई दिखाई पड़े तो वह नाकामी, अहिंसाका उपयोग करनेवालेकी अयोग्यताकी वजहसे है। मैंने कभी यह महसूस नही किया कि नोआखालीमें मेरी अहिंसा असफल रही है, न यही कहा जा सकता कि वह सफल हुई है। अभी तो उसकी जांच हो रही है। और जब मै अपनी अहिंसाके बारेमे बोलता हूं तो मै उसे अपने तक ही सीमित नही मानता। उसमे नोआखालीमें मेरे साथ काम करनेवाले भाई भी शामिल है। इसलिए वहां मिलनेवाली सफलता या असफलताका श्रेय मेरे और मेरे साथियोंके सम्मिलित कामको मिलेगा।

नोआखालीके बारेमें मैंने जो कुछ कहा है, वह कलकत्तेपर भी लागू होता है। अभी यह नही कहा जा सकता कि इस बड़े शहरमे सांप्रदायिक सवालको हल करनेमें जो अहिंसाका उपयोग किया गया है, उसकी सफलतामें कोई संदेह नही है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, कलकत्तेके दो फिरकोमें दोस्ती कायम होनेकी बातको चमत्कार मानना गलती है। इसके लिए परिस्थिति तो पहलेसे ही तैयार थी। इतनेमे शहीदसाहब और मैं इसका श्रेय लेनेके लिए सामने आ गए। जो हो, अहिंसाके प्रयोगकी सफलता या असफलताके बारेमे अभीसे कोई बात कहना जल्दबाजी होगी। सबसे पहली

बात तो यह है कि हम दोनो साथियोंके विचार एक-से हों और हम दोनो अहिंसामे विश्वास करें। इसका पूरा भरोसा हो जानेपर मै कहूंगा कि अगर हम अहिंसाके विज्ञानको और उसके प्रयोगको जानते है तो हम जरूर कामयाव होगे।

कलकत्ता, ३१–८–'४७

: १७ :

कलकत्तेका दंगा

आपको यह रिपोर्ट देते हुए मुझे अफसोस होता है कि पिछली रातको कुछ नौजवान मेरे पास एक आदमीको लाए, जिसे पट्टी बधी हुई थी। मुझसे कहा गया कि उस आदमीपर किसी मुसलमानने हमला किया है। प्रधान-मंत्रीने उसकी जाच कराई तो पता चला कि उसके शरीरपर चाकूके कोई निशान नही थे, जैसा कि उन लोगोंने बतलाया था। यहांपर खास बात यह नही है कि उस आदमीको लगी हुई चोट कितनी भयंकर थी। जिस बातपर मै जोर देना चाहता हू, वह यह है कि इन नौजवानोंने खुद ही न्यायाधीश और खुद ही सजा देनेवाले बननेकी कोशिश की।

यह कलकत्ता-समयके अनुसार १० बजे रातकी बात है। वे लोग बडे जोर-जोरसे चिल्लाने लगे। मेरी नीदमे विघ्न पड चुका था, मगर क्या हो रहा है इस बातको न जानते हुए मैने चुपचाप पड़े रहनेकी कोशिश की। मैने खिड़कीके

काचोके टूटनेकी आवाज सुनी । मेरे दोनों तरफ दो वहुत वहादुर लडकियां लेटी हुई थी । वे सोई नही थी । मेरे विना जानें—क्योकि मेरी आखे वंद थी—वे उस थोडी-सी भीडमे गई और उसे शात करनेकी उन्होने कोशिश की । भगवानको धन्यवाद है कि उस भीडने उन्हे कोई नुकसान नही पहुचाया । उस परिवारकी बूढी मुस्लिम महिला, जिसे सव वडे प्रेमसे 'वी अम्मा' कहते थे, और एक मुस्लिम नौजवान, शायद खतरेसे मेरी हिफाजत करनेके लिए, मेरे विस्तरके पास आकर खडे हो गए । भीडका शोर-गुल वढता ही गया । कुछ लोग वीचके वडे कमरेमे घुस आए और कई दरवाजोको धक्के मारकर खोलने लगे । मैंने महसूस किया कि मुझे उठकर गुस्सेसे भरी उस भीडके सामने जरूर जाना चाहिए । मै उठा और एक दरवाजेकी देहलीजपर जाकर खडा हो गया । दोस्तोने मुझे घेर लिया और आगे जानेसे मुझे रोकने लगे । मै अपने मौन-व्रतको ऐसे मौकोपर तोड देता हू । इसलिए मैंने अपना मौन तोडकर उन गुस्सेसे भरे हुए नौजवानोसे शांत होनेकी अपील करना शुरू किया । मैंने कनु गाधीकी वगाली पत्नी आभासे कहा कि वह मेरे कुछ शब्दोका वगालीमे तरजुमा कर दे । वह भी किया गया, मगर कोई फायदा नही हुआ । मानो उन लोगोने समझदारीकी कोई भी वात सुननेके लिए अपने कान वंद कर लिए थे ।

मैंने और कुछ न करके हिंदू ढंगसे अपने दोनो हाथ जोडे । और ज्यादा खिडकियोके कांच टूटनेकी आवाज आने लगी । उस भीडमे जो दोस्ताना रुखवाले लोग थे, उन्होने भीडको

शांत करनेकी कोशिश की। पुलिस अफसर भी वहां मौजूद थे। उनके लिए यह तारीफकी वात है कि उन्होने अपनी सत्ताका उपयोग करनेकी कोशिश नही की। उन्होंने भी भीड़से शांत होनेंकी अपील करते हुए अपने हाथ जोड़े। मुझपर लाठीका एक वार हुआ, जो मुझे और मेरे आसपास खडे हुए लोगोको लगते-लगते वचा। मुझे निशाना वनाकर फेकी गई एक ईंट मेरे पास खडे हुए एक मुसलमान दोस्तको लगी। वे दो लड़कियां मुझे जरा-सी देरके लिए भी नहीं छोड़ना चाहती थी और आखिरतक वे मेरे पास वनी रही। इतनेमे पुलिस सुपरिंटेंडेंट और उनके अफसर भीतर आए। उन्होंने भी जोर-जबरदस्ती नही की। उन्होंने मुझसे दरख्वास्त की कि मै भीतर चला जाऊ, तव उन्हे उन नौजवानोको शांत करनेका मौका मिलेगा। कुछ देर वाद भीड़ वहासे हट गई।

अहातेके फाटकके वाहर जो कुछ हुआ, उसके वारेमें मै सिर्फ इतना ही जानता हूं कि भीड़को हटानेके लिए पुलिसको अश्रुगैसका इस्तेमाल करना पडा था। इसी वीच डा० पी० सी० घोष, आनंदवावू और डा० नृपेन भीतर आए और मुझसे कुछ चर्चा करनेके वाद चले गए। दूसरे दिन मेरा नोआखाली जानेका इरादा था, इसलिए खुशकिस्मतीसे शहीदसाहव उसकी तैयारी करनेके लिए उस दिन अपने घर चले गए थे। ऊपर दी हुई वेहूदा घटनाका खयाल करके मै कलकत्ता छोड़कर नोआखाली जानेकी वात सोच भी न सका, क्योंकि वह घटना कलकत्ताको किस हालतमे पहुचा देगी यह कोई नही कह सकता था।

इस घटनाका सवक क्या है ? मै साफ तौरपर समझ गया हू कि अगर हिंदुस्तानको महगे दामो हासिल की हुई अपनी आजादीको टिकाए रखना है तो सब मर्दो और औरतोको मारपीट और जोर-जवरदस्तीके कानूनको पूरी तरह भूल जाना होगा । जो कुछ लोगोने करना चाहा वह तो इस जंगली कानूनकी भद्दी नकलमात्र है । अगर मुसलमानोने वुरा वर्ताव किया था और इसकी शिकायत करनेवाले लोग मंत्रियोके पास नही जाना चाहते थे तो वे मेरे या मेरे दोस्त शहीद-साहवके पास आ सकते थे । यही वात उन मुसलमानोंपर भी लागू होती है जिन्हे कोई शिकायत करनी है । अगर सभ्य समाजके वुनियादी नियमोपर अमल नही किया जाता तो कल-कत्ता या दूसरी किसी भी जगह शाति वनाए रखनेका कोई रास्ता नही है । जनता, पंजावमे या हिंदुस्तानके वाहर होने-वाले वहशियाना कामोपर ध्यान न दे । यह सुनहला नियम सवपर एक ही रूपमे लागू होता है कि कोई शख्स कानूनको कभी भी अपने हाथमे न ले ।

मेरे सेक्रेटरी देवप्रकाशने, जो पटनामे है, तारके जरिये मुझे यह खबर दी है—"पंजावकी घटनाओसे जनतामे उत्तेजना है । अखवारोको और जनताको उनके कर्त्तव्यकी याद दिलाने-वाला आपका वयान जरूरी मालूम होता है ।" श्रीदेवप्रकाश कभी विना कारण उत्तेजित नही होते । अखवारोंमे जरूर कुछ गैर-जिम्मेदार शव्द निकले होगे । इस समय जव कि हम वारूदखानेपर वैठे हुए है, चौथा स्टेट—प्रेस—को वहुत ज्यादा समझदार और मौन होनेकी जरूरत है । इस समय

अविवेक चिनगारीका काम करेगा। मुझे उम्मीद है कि हर सपादक और सवाददाता पूरी तरह अपने फर्जको समझेगा।

मुझे एक बात यहां जरूर कह देनी चाहिए। पजावसे मुझे एक जरूरी सदेशा मिला है कि मैं जल्दी-से-जल्दी वहां पहुंचूं। मैं कलकत्तामे होनेवाली अशांतिके बारेमे सब तरहकी अफवाहे सुनता हूं। मुझे उम्मीद है कि अगर वे बिलकुल बेबुनियाद नही है तो बढा-चढाकर जरूर कही गई है। कलकत्ताके लोगोंको फिरसे मुझे विश्वास दिलाना होगा कि यहां कोई गड़बडी नही होगी और जो शांति एक बार कायम हो चुकी है, वह भग नही होगी।

पिछली १४ अगस्तसे जब यहां शाति नजर आई तभीसे मैं कहता आया हूं कि यह सिर्फ थोडे ही दिनोकी शाति हो सकती है। इस शांतिके कायम होनेका कारण कोई चमत्कार नही था। क्या मेरी आशका सच सावित होगी और कलकत्तामे फिरसे वहशियाना वारदाते होने लगेगी? हम उम्मीद करे कि ऐसा नही होगा। हम प्रभुसे प्रार्थना करे कि वह हमारे दिलोंको छू दे, ताकि हम अपने पागलपनको फिरसे न दोहरावे।

ऊपरकी बाते लिखनेके बादसे, यानी करीब चार बजेके बादसे शहरके अलग-अलग हिस्सोमे होनेवाली घटनाओका पूरा-पूरा हाल मेरे पास आ रहा है। कुछ जगहे, जो कलतक सुरक्षित थी, अचानक खतरनाक बन गई है। कई लोग मारे गए है। मैने दो बहुत गरीब मुसलमानोकी लाशें देखी। कुछ फटेहाल मुसलमानोंको किसी हिफाजतकी जगहकी तरफ

गाडियोमे हटाए जाते हुए देखा । मै अच्छी तरह जानता हूं कि पिछली रातकी जिन घटनाओका इतने विस्तारसे ऊपर बयान किया गया है, वे इस आगके सामने बहुत मामूली है । इस खुली आगमे घुसकर मै जो कुछ करू, उसमेसे एक भी ऐसी बात मुझे नजर नही आती, जो इस आगको काबूमे कर सके ।

जो मित्र मुझे शामको मिले थे उन्हे मैने बतला दिया है कि इस समय उनका फर्ज क्या है, दगेको रोकनेके लिए मुझे क्या करना चाहिए । सिक्खों और हिदुओको भूलना नही चाहिए कि इन कुछ दिनोमे पूरबी पजाबने क्या किया है । अब पश्चिमी पजाबके मुसलमानोने अपने पागलपनभरे काम शुरू किए है । कहा जाता है कि पजाबकी वारदातोसे सिक्ख और हिंदू गुस्सा हो उठे है ।

मै ऊपर बतला चुका हूं कि पंजाबसे मुझे जरूरी बुलावा आया है, मगर जब कलकत्तामे दगेकी आग फिरसे भडकी हुई जान पडती है तब मै कौन-सा मुह लेकर पजाब जा सकता हूं ? अभीतक जो हथियार मेरे लिए अचूक साबित हुआ है, वह है उपवास । जोर-जोरसे चिल्लाती हुई भीडके सामने जाकर खडे हो जाना हमेशा काम नही देता । पिछली रातको उससे सचमुच कोई फायदा नही हुआ । जो काम मेरे मुहसे निकले हुए शब्द नही कर सकते, उसे शायद मेरा उपवास कर दे । अगर कलकत्ताके सारे दगाइयोके दिलोपर उसका असर हो जाय तो पंजाबके दगाइयोंके दिलोको भी वह छू सकता है । इसलिए आज रातको सवा आठ बजेसे मै अपना उपवास शुरू करता हू । वह सिर्फ उसी हालतमे और तभी खत्म होगा

जब कलकत्ताके लोग अपना पागलपन छोड़ देंगे । उपवासके दरमियान जब मेरी पानी पीनेकी इच्छा होगी तब मैं हमेशाकी तरह नमक और सोडा-बाइकार्ब मिला हुआ पानी लूंगा ।

अगर कलकत्ताके लोग चाहते हैं कि मैं पंजाब जाकर वहांके लोगोंकी मदद करूं तो उन्हें जितनी हो सके उतनी जल्दी मेरा उपवास तुड़वाना चाहिए ।

कलकत्ता, १–९–'४७

: १८ :

सही या गलत ?

गुजरातीमें मुझे लिखे गए एक खतका सारांश नीचे देता हूं :

"१५ सितंबर १९२७ के 'यंग इंडिया'में आपका मद्रासमें दिया हुआ जो भाषण छपा है उसमें आपने कहा है कि जो धर्म, शुद्ध अर्थके खिलाफ हो, वह धर्म नहीं है; और जो अर्थ धर्मके खिलाफ हो, वह शुद्ध नहीं है, इसलिए वह छोड़ देने लायक है ।

"मैं तो जानता ही हूं कि एक अरसेसे आपका यह मत रहा है । मगर इसे सबने माना कब है ? इसलिए मुझे लगता है कि आज धर्मके नामपर होनेवाली खूंरेजीको शांत करनेमें आप जो अपना सारा वक्त और ताकत खर्च कर रहे हैं, यह ठीक नहीं है । आपका रचनात्मक कार्यक्रम आज कहां चल रहा है ? कांग्रेसके हाथमें आज हिंदुस्तानके बड़े हिस्सेकी बागडोर है । अब तो आजादी मिल गई । अंग्रेज चले गए । तब फिर

आप अपने रचनात्मक कामको आगे बढ़ाकर यह साबित करनेमें पूरा वक्त क्यो नहीं लगाते कि धर्म और अर्थ दो विरोधी चीजें नहीं है ? आज-कल होनेवाले आर्थिक अन्यायके खिलाफ आप कुछ भी नहीं लिखते, इससे भले लोग यही मानते है कि कांग्रेस-सरकार जो कुछ करती है, उसमें आपका आशीर्वाद होता ही है। लेकिन मै तो यह मानता हूं कि आप ही रचनात्मक कामके जन्मदाता होकर आज उसे दफना रहे है। आज खादी या ग्रामोद्योगके अर्थशास्त्रके आधारपर स्वावलंबनसे चलनेवाली एक भी संस्था कहीं देखनेमें नहीं आती।"

ऊपर की बात आवेशमे लिखी गई है। इससे लिखने-वाले भाई आधी सच बात ही कह सके है। खास बात यह है कि हिंदू-मुस्लिम-एकताकी बात मेरे मनमे तबसे समाई हुई है, जब कि खादी और उसके आसपासके ग्राम-उद्योगोकी बात मेरे सपनेमे भी नही थी।

जब मै बारह वर्षकी उम्रमें एक मामूली विद्यार्थीकी तरह पहली अंग्रेजी क्लासमे भर्ती हुआ था, तभीसे मै अपने मनमें यह मानने लगा था कि हिंदू, मुसलमान, पारसी सब एक ही हिंदुस्तानकी संतान है और इसलिए उनमे आपसमे भाईचारा होना चाहिए। यह सन् १८८५ से पहलेकी बात है, जब कि कांग्रेसका जन्म भी नही हुआ था। इसके सिवा यह एकता कायम करनेका काम रचनात्मक कामका एक ऐसा अग है, जिसे अलग नही किया जा सकता। इसके लिए मैंने बहुतसे खतरे मोल लिए है और मै मानता हूं कि अगर यह न हो तो दूसरे रचनात्मक काम चल ही न सके। कम-से-कम मेरे हाथों तो चल ही न सके। मुझसे यह नही हो सकता। खत लिखनेवाले भाईकी दलीलके मुताबिक तो मुझे नोआखाली नही जाना चाहिए था, बिहार

नही दौडना था। यानी जो काम मै जानता हूं, जिसे मैंने बरसोंसे किया है, उस कामको कसौटीके वक्त भूल जाऊं। यह कैसे हो सकता है ? इसे भूलकर मैं दूसरे रचनात्मक कामके पीछे दौडूं तो यह अपना धर्म छोड़ना होगा और इससे फायदा तो कुछ होनेवाला है नही।

जिन कांग्रेस-सेवकोके हाथमे आज वागडोर है, वे मेरे साथी है। यह भी कहा जा सकता है कि इन सबने मेरे साथ ही कांग्रेसमे तरक्की की और ऊंचे उठे। अगर मैं अपना अर्थशास्त्र इनके गले न उतार सका तो फिर किसे समझा सकूंगा ? शासनकी वागडोर हाथमे आनेके वाद उनकी वुद्धि कवूल नही करती कि वे जनतासे खादीशास्त्र मजूर करा सकेगे या ग्राम-उद्योगोके मारफत गावोंको नई जिदगी दे सकेगे। खत लिखनेवाले भाईका सुझाव है कि मुझे श्री जाजूजी[1]को और श्रीकुमारप्पा[2]-को हिदुस्तानकी वागडोर लेनेके लिए तैयार करना चाहिए। यह कैसा भ्रम है ? इस तरह किसीको तैयार करनेवाला मै कौन होता हूं ? पचायत-राज एक हाथसे नही चल सकता। जिनके हाथोमे शासन है, उनकी जगह लेनेवाला कोई ज्यादा बलवान और विवेकशील आदमी हो, तो आज उन्हे हटना पड़े। जहांतक मैं इन लोगोंको जानता हूं, वहांतक कह सकता हूं कि ये लोग हुकूमतके भूखे नही है। इसलिए जब कोई ज्यादा लायक आदमी पैदा होगा तब उसे पहचाननेमे इन्हे देर नही

---

[1]श्री कृष्णदास जाजू।

[2]श्री जे० सी० कुमारप्पा।

लगेगी और ये लोग खुशीसे उसके हाथमें हुकूमत सौंपकर अपना जीवन सफल मानेंगे।

ऐसी भूल कोई न करे कि मैं यह जगह ले सकता हूं। अगर मैं प्रधान बननेके लिए तैयार होऊं तो ये लोग मेरा स्वागत करेंगे, मगर मुझमें राम नहीं है। मैं खुद रामका पुजारी हूं, उसका भक्त हूं। मगर रामके सब भक्त, राम थोड़े ही बन सकते हैं ? हमें तो राम रखे, उसी तरह रहना चाहिए।

इसके सिवा, यह बात ध्यान देने लायक है कि जो काम मैं अपने तरीकेसे कर रहा हूं, वही काम उनके अपने तरीकेसे करनेमें ही उनका सारा वक्त जाता है; क्योंकि वे समझते हैं कि जबतक सांप्रदायिक सवाल नहीं सुलझता तबतक हिंदुस्तानमें शांति नहीं हो सकती। और जबतक शांति नहीं होगी तबतक प्रजाके दूसरे सारे काम यों ही पड़े रहेंगे।

अंतमें मुझे खत लिखनेवाले भाईने अपने जैसे विचार प्रकट किए हैं, वैसे विचार रखनेवालोंको समझना चाहिए कि अगर रचनात्मक कार्यक्रमपर करोड़ों इन्सानोंसे अमल कराना हो तो इसके लिए हजारों कार्यकर्ताओंकी जरूरत है, भले ही यह योजना एक इन्सानके दिमागसे निकली हो। लोगोंके सामने इसे रखे बरसों बीत गए हैं। अखिल भारत-चरखा-संघ, ग्राम-उद्योग-संघ, गो-सेवा-संघ, हिंदुस्तानी प्रचार-संघ, आदिवासी-सेवा-संघ, हरिजन-सेवक-संघ वगैरह पैदा हुए। वे आज जिंदा हैं और अपनी ताकतके अनुसार काम कर रहे हैं। ये सब धर्म और अर्थका समीकरण समझ चुके हैं। साम्प्रदायिक मेल-मिलापका काम करते हुए मैं ऊपरके सारे कामोंमें पहले-जैसा ही रस ले

रहा हूं, शक्तिके अनुसार उसमे अपना सिर भी खपा रहा हूं। अब इससे ज्यादा मुझसे उम्मीद भी न करनी चाहिए। आज जिसे मैं अपना फर्ज मान बैठा हूं, लालचमे पड़कर उससे मुझे डिगना नही चाहिए। ऊपरकी चेतावनी देनेके बदले, मुझे सावधान करनेके बदले, यह जरूरी है कि खत लिखनेवाले भाई जैसे सभी लोग सावधान होकर अपने काममे लग जायं।

मैंने सैकडों बार कहा है कि हमारे हाथमे हुकूमतका होना जरूरी नही है। जिन्हे हम हाकिम बनाते है, उन्हे सावधान रखना चाहिए। नेता तो गिनतीके होगें, मगर जनता अपनी ताकत और अपने धर्मको समझ ले और उसके अनुसार काम करे, तो सब कुछ अपने आप ठीक हो सकता है। हमे आजादी भोगते अभी तो सिर्फ अठारह दिन ही हुए है, इतनेमे यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि सारा काम अपने आप हो जाय? जिनके हाथोंमे जनताने हुकूमत सौंपी है, वे भी नई परिस्थितिके लिए पहलेसे तैयार नही है, बल्कि तैयार हो रहे हैं।

कलकत्ता, ४–९–'४७

: १६ :

बिहार बिहारियोंके लिए और हिंदुस्तान ?

बिहार, सचमुच बिहारियोके लिए है, लेकिन वह हिंदुस्तानके लिए भी है। जो बात बिहारके बारेमे सच है वही यूनियनके दूसरे सब सूबोके बारेमें भी सच है। किसी भी

हिंदुस्तानीके साथ विहारमे परदेशीकी तरह वर्ताव नही किया जा सकता, जैसा कि शायद उसके साथ आजके पाकिस्तानमे या एक पाकिस्तानीके साथ हिंदुस्तानमे किया जा सकता है। अगर हम मुसीबतो और आपसी जलनसे वचना चाहते है तो हमे इस फर्कका ध्यान रखना चाहिए।

इसलिये हालांकि यूनियनके हर हिंदुस्तानीको विहारमें वसनेका हक है, फिर भी उसे विहारियोको उखाडने या उनके हक छीननेके लिए ऐसा नही करना चाहिए। अगर इस शर्तपर अच्छी तरह अमल नही किया गया तो सभव है कि विहारमें गैर-विहारी हिंदुस्तानियोंकी ऐसी वाढ आ जाय कि विहारियोंको वडी तादादमें अपने सूवेसे वाहर निकलना पडे। इस तरह हम इस नतीजेपर पहुचनेके लिए मजवूर हो जाते है कि जो गैर-विहारी हिंदुस्तानी, विहारमे जाकर वसता है, उसे विहारकी सेवाके लिए ही ऐसा करना चाहिए, न कि हमारे पुराने मालिकोंकी तरह उसे चूसने और लूटनेके लिए।

इस विषयकी इस तरह जांच करनेसे हमारे सामने जमीदारों और रैयतका सवाल खड़ा होता है। जव कोई गैर-विहारी पैसा पैदा करनेके लिए विहारमे जाकर वसता है तो वहुत सभव है कि वह जमीदारसे मिलकर रैयतको चूसनेके लिए ऐसा करे। लेकिन जमीदार सचमुच रैयतके लिए अपनी जमीदारीके ट्रस्टी वन जाय तो ऐसा अपवित्र गुट्ट कभी वन ही नही सकता। विहारमे जमीदारीका कठिन सवाल अभी हल किया जानेको है। हम तो यह पसद करेंगे कि विहारके छोटे और वडे जमीदारों, उनकी रैयत और सरकारके वीच कोई

ऐसा उचित निष्पक्ष और संतोषके लायक समझौता हो, जिससे, कानून पास हो जानेपर ऐसा मौका न आए कि कोई उसपर अमल न करे, या जमींदारों या रैयतके साथ जबरदस्ती करनेकी जरूरत पड़े। काश, सारे हिंदुस्तानमें बिना खून बहाए और बिना जबर्दस्ती किए ये सारे फेरफार—जिनमेंसे कुछ क्रांतिकारी भी होने चाहिए—हो जायं! यह तो हुआ हिंदुस्तानके दूसरे सूबोंसे आकर बिहारमें बसनेवालोंके लिए।

वहांकी नौकरियोंका क्या हो? ऐसा लगता है कि अगर यूनियनके सारे सूबोंको हर दिशामें एक-सी तरक्की करनी हो तो हर सूबेकी नौकरियां, पूरे हिंदुस्तानकी तरक्कीके खयालसे ज्यादातर वहांके रहनेवालोंको ही दी जानी चाहिएं। अगर हिंदुस्तानको दुनियाके सामने स्वाभिमानसे सिर ऊंचा रखना है तो किसी सूबे और किसी जाति या तबकेको पिछड़ा हुआ नहीं रखा जा सकता। लेकिन अपने उन हथियारोंके बलपर हिंदुस्तान ऐसा नहीं कर सकता, जिनसे दुनिया ऊब उठी है। उसे अपने हर नागरिकके जीवनमें और हालमें ही मेरे द्वारा 'हरिजन' में बताए गए समाजवादमें प्रकट होनेवाली अपनी स्वभावजन्य संस्कृतिके द्वारा ही चमकना चाहिए। इसका यह मतलब है कि अपनी योजनाओं या उसूलोंको जनप्रिय बनानेके लिए किसी भी तरहकी ताकत या दबावको काममें न लिया जाय। जो चीज सचमुच जन-प्रिय है, उसे सबसे मनवानेके लिए जनताकी रायके सिवा दूसरी किसी ताकतकी शायद ही जरूरत हो। इसलिए बिहार, उड़ीसा और आसाममें कुछ लोगोंद्वारा की जानेवाली हिंसाके जो बुरे दृश्य देखे गए, वे

कभी नही दिखाई देने चाहिए थे। अगर कोई आदमी नियमके खिलाफ काम करता है या दूसरे सूबोंके लोग किसी सूबेमे आकर वहांके लोगोंके हक मारते हैं तो उन्हे सजा देने और व्यवस्था कायम रखनेके लिए जन-प्रिय सरकारें सूबोंमे राज कर रही है। सूबोंकी सरकारोंका यह कर्तव्य है कि वे दूसरे सूबोंसे अपने यहां आनेवाले सब लोगोकी पूरी-पूरी हिफाजत करें। "जिस चीजको तुम अपनी समझते हो, उसका ऐसा इस्तेमाल करो कि दूसरेको नुकसान न पहुंचे"—यह समानताका जाना-पहचाना उसूल है। यह नैतिक बर्तावका भी सुदर नियम है। आजकी हालतमें यह कितना उचित मालूम होता है!

यहांतक मैंने सूबेमें आनेवाले नए लोगोके बारेमें कहा। लेकिन उन लोगोंका क्या, जिनमेसे कुछ बिहारमे १५ अगस्तके दिन सरकारी नौकरियोमे और कुछ खानगी नौकरियोंमे थे? जहांतक मेरा विचार है, ऐसे लोग जबतक दूसरा चुनाव नहीं करते तबतक उनके साथ बिहारियोंकी तरह ही बरताव किया जाना चाहिए। कुदरती तौरपर उन्हे परदेशियोकी तरह अलग बस्ती नही बनानी चाहिए। "रोममें रोमनोंकी तरह रहो"—यह कहावत जहांतक रोमन बुराइयोंसे दूर रहती है, वहांतक समझदारीसे भरी और फायदा पहुचानेवाली कहावत है। एक दूसरेके साथ घुल-मिलकर तरक्की करनेके काममें यह ध्यान रखना चाहिए कि बुराइयोको छोड़ दिया जाय और अच्छाइयोंको पचा लिया जाय। बगालमें एक गुजरातीके नाते मुझे बंगालकी सारी अच्छाइयोको तुरत पचा लेना चाहिए

और उसकी बुराईको कभी छूना भी नही चाहिए । मुझे हमेशा बंगालकी सेवा करनी चाहिए, उसे अपने फायदेके लिए चूसना नही चाहिए। दूसरोसे बिलकुल अलग रहनेवाली हमारी प्रांतीयता जिंदगीको बरबाद करनेवाली चीज है। मेरी कल्पनाके सूबेकी हद सारे हिंदुस्तानकी हदोंतक फैली हुई होगी, ताकि अंतमे उसकी हद सारे विश्वकी हदोतक फैल जाय, वर्ना वह खतम हो जायगा ।

दिल्ली जाते हुए, रेलमे ८–९–'४७

: २० :

नशीली चीजोंकी मनाही

इस सुधारके लिए आज सबसे अच्छा मौका है। आज देशमें पंचायतका राज है। हिंदुस्तानके दोनो हिस्सोके साथ-साथ देशी राज भी इस सुधारके लिए तैयार है। दोनों हिस्सोंमे भुखमरी फैली हुई है। न खानेको अनाज मिलता है, न पहननेको कपड़ा। जब लोग भुखमरी और नंगेपनके किनारे खड़े हों तब शराब, अफीम वगैरहके बारेमें सोचा भी नहीं जा सकता। शराब और अफीम पीनेवाले लोग पैसा तो बरबाद करते ही हैं, साथ ही अपने आपपर काबू भी खो देते हैं। नशेके असरमे आदमी न करने लायक काम भी कर बैठता है। इसलिए हर तरहसे विचारते हुए नशीली चीजोंका खाना और पीना बंद होना ही चाहिए।

हम सिर्फ कानून पास करके ही इस बुराईको खतम नही कर सकते। नशा करनेवाले चाहे जहांसे नशीली चीजें लाकर खाएं-पिएंगे। इनके बनानेवाले और बेचनेवाले काला बाजार बंद करनेके लिए एकदम तैयार नही होंगे।

इसलिए नीचेकी तमाम बाते एक साथ की जानी चाहिए

(१) जरूरी कायदा बनाया जाय,

(२) लोगोंको नशेकी बुराई समझाई जाय,

(३) शराबकी दूकानोंपर ही सरकारको पीनेकी निर्दोष चीजोकी दुकाने कायम करनी चाहिएं। और वहां किताबो, अखबारो और खेलोके रूपमे मनबहलावके निर्दोष साधन रखने चाहिए।

(४) शराब, अफीम वगैरह बेचनेसे जो आमदनी हो, वह सब लोगोंको नशीली चीजे न बरतनेकी बात समझानेमे खर्च की जानी चाहिएं।

(५) नशीली चीजोकी बिक्रीसे होनेवाली आमदनीको राष्ट्रके बच्चोकी शिक्षामे या जनताको फायदा पहुचानेवाले दूसरे कामोमें खर्च करना बडा पाप है। सरकारको ऐसी आमदनी राष्ट्र-निर्माणके कामोंमे खर्च करनेका लालच छोडना ही चाहिए। अनुभव यह बताता है कि नशीली चीजोंका खान-पान छोडनेवालेको जो फायदा होता है उसे सारी प्रजाका फायदा समझना चाहिए। अगर हम इस बुराईको जडसे खतम कर दे तो हमे राष्ट्रकी आमदनी बढानेके दूसरे बहुतसे रास्ते और साधन आसानीसे मिल जायंगे।

दिल्ली जाते हुए, रेलमे, ८-९-'४७

: २१ :

मंत्रियोंकी जिम्मेदारी

मेरे पास ऐसे बहुतसे खत आए है, जिनमे लिखनेवाले भाइयोने हमारे मन्त्रियोके रहन-सहनको आरामतलब कहकर उसकी कडी आलोचना की हैं। उनपर यह आरोप लगाया गया है कि वे पक्षपातसे काम लेते है और अपने रिश्तेदारोको ही आगे बढाते है। मै जानता हूं कि बहुत-सी आलोचना तो, आलोचकोकी बेजानकारीकी वजहसे होती है। इसलिए मंत्रियोको उससे दुःखी नही होना चाहिए। सिर्फ दोष बतलाने-वाली आलोचनामेंसे भी उन्हे अपने लिए अच्छा हिस्सा ले लेना चाहिए। यदि मेरे पास आए हुए पत्र मै उनके पास भेज दूं तो उन्हे ताज्जुब होगा। सभव है कि उनके पास इनसे भी बुरे खत आते हों। जो हो, इन खतोसे मै यही सबक लेता हूं कि जहांतक सादगी, धीरज, ईमानदारी और मेहनत करनेका सबंध है, ये 'आलोचक' जनताद्वारा चुने हुए सेवकोसे दूसरोकी अपेक्षा ज्यादा उम्मीद रखते हैं। शायद मेहनत और अनुशासनको छोड़कर और किसी बातमे हमें पुराने अंग्रेज शासकोंकी नकल नहीं करनी चाहिए। अगर एक तरफ मंत्री लोग उचित आलोचनासे फायदा उठाने लगें और दूसरी तरफ आलोचना करनेवाले भाई कोई बात कहनेमे संयम और पूरी-पूरी सचाईका खयाल रखें तो इस टिप्पणीका मकसद पूरा हो जायगा। गलत बात कहने या बातको बढ़ा-चढ़ाकर कहनेसे एक अच्छा मामला भी बिगड़ जाता है।

दिल्ली जाते हुए, रेलमे, ८–९–'४७

: २२ :

दिल्लीकी अशांति

'मेरे मन कछु और है, कर्ताके कछु और' वाली कहावत मेरे जीवनमे कई वार सच सावित हुई है, जैसी कि वह दूसरे वहुतसे लोगोके जीवनमे भी हुई होगी। जव मैने पिछले इतवारको कलकत्ता छोडा तो मै दिल्लीकी अशात हालतके वारेमे कुछ भी नही जानता था। दिल्ली आनेके वाद मै सारे दिन यहाकी मौजूदा दर्दभरी कहानी सुनता रहा हू। मै कई मुसलमान दोस्तोंसे मिला, जिन्होने अपनी करुण कहानी सुनाई। जितना कुछ मैने सुना, वह मुझे यह चेतावनी देनेके लिए काफी है कि जवतक दिल्लीकी हालत पहले-जैसी शात न हो जाय तवतक उसे छोडकर मुझे पजाव नही जाना चाहिए।

इस गरम वातावरणको शात करनेके लिए मुझे अपनी कुछ कोशिश करनी ही चाहिए और हिंदुस्तानकी इस राजधानीके लिए 'मुझे करो या मरो' वाला अपना पुराना सूत्र काममें लेना ही चाहिए। मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि दिल्लीमे रहनेवाले लोग इस निरर्थक वरवादीको पसद नही करते। मैं उन शरणार्थियोंके गुस्सेको समझता हू, जिन्हे दुर्भाग्यने पश्चिमी पंजावसे खदेड़ दिया है। मगर गुस्सा पागलपनका छोटा भाई है। वह परिस्थितिको हर तरहसे विगाड ही सकता है। इस मर्जका इलाज वदला लेना नही है। उससे असली वीमारी और ज्यादा विगड़ती है। इसलिए जो लोग खून

करने, आग लगाने और लूट-मार करनेके नासमझीभरे कामोंमें लगे हुए हैं, उनसे मेरी विनती है कि वे अपना हाथ रोकें।

केंद्रीय सरकारमे हिंदुस्तानी संघके सबसे काबिल, हिम्मतवर और ज्यादा-से-ज्यादा आत्मबलिदानकी भावना-वाले लोग इस वक्त काम कर रहे हैं। आजादीका ऐलान होनेके बाद, उन्हे अपना काम संभाले अभी महीनाभर भी नही हुआ है। बिगडे हुए कारबारको व्यवस्थित करनेका उन्हें मौका न देना गुनाह और आत्मघात करना है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि देशमे अनाजकी कमी है। दगोंकी वजहसे दिल्लीका सारा इंतजाम बिगड गया है, जिससे अनाज बांटनेका काम असंभव हो गया है। भगवान पागल बनी हुई दिल्लीमे फिरसे शांति कायम करे।

मैं इस उम्मीदके साथ अपनी बात खतम करता हूं कि मेरे विदा होते वक्त कलकत्ताने जो वचन दिया था, उसे वह पूरा करेगा। मेरे आसपास फैले हुए इस पागलपनके बीच उसका दिया हुआ वचन ही मुझे सहारा दिए हुए है।

नई दिल्ली, ९–९–'४७

: २३ :

सावधान !

अगर सरकारे और उनके दफ्तर सावधानी नही रखेंगे तो मुमकिन है कि अंग्रेजी जबान हिंदुस्तानीकी जगहको हड़प

ले। इससे हिंदुस्तानके उन करोड़ों लोगोंको बेहद नुकसान होगा, जो कभी भी अंग्रेजी समझ नही सकेंगे। मेरे खयालमें प्रांतीय सरकारोंके लिए यह बहुत आसान बात होनी चाहिए कि वे अपने यहा ऐसे कर्मचारी रखें, जो सारा काम प्रांतीय भाषाओ और अतर्प्रांतीय भाषामे कर सके। मेरी रायमे अतर्प्रांतीय भाषा, सिर्फ नागरी या उर्दू लिपिमे लिखी जाने-वाली हिंदुस्तानी ही हो सकती है।

यह जरूरी फेरफार करनेमे एक दिन खोना भी देशको भारी सांस्कृतिक नुकसान पहुचाना है। सबसे पहली और जरूरी चीज यह है कि हम अपनी उन प्रांतीय भाषाओका सशो-धन करे जो हिंदुस्तानको वरदानकी तरह मिली हुई है। यह कहना दिमागी आलसके सिवा और कुछ नही है कि हमारी अदालतों, हमारे स्कूलो और यहांतक कि हमारे दफ्तरोमे भी यह भाषा-सबधी फेरफार करनेके लिए कुछ वक्त, शायद कुछ बरस चाहिए। हा, जबतक प्रातोंका भाषाके आधारपर फिरसे बंटवारा नही होता तबतक बबई और मद्रास-जैसे प्रांतोंमे, जहां बहुत-सी भाषाए बोली जाती है, थोडी मुश्किल जरूर होगी। प्रातीय सरकारे ऐसा कोई तरीका खोज सकती है, जिससे उन प्रांतोके लोग वहां अपनापन अनुभव कर सके। जबतक हिंदुस्तानी-संघ इस सवालको हल न कर ले कि अत-र्प्रांतीय जबान नागरी या उर्दू लिपिमे लिखी जानेवाली हिंदु-स्तानी हो, या सिर्फ नागरी लिपिमे लिखी जानेवाली हिंदी, तबतकके लिए प्रांतीय सरकारें ठहरी न रहें। इसकी वजहसे उन्हे जरूरी सुधार करनेमे देर न लगानी चाहिए। भाषाके

बारेमें यह एक बिलकुल गैरजरूरी विवाद खडा हो गया है, जिसकी वजहसे हिंदुस्तानमे अंग्रेजी-भाषा घुस सकती है। और अगर ऐसा हुआ तो इस देशके लिए यह एक ऐसे कलंककी बात होगी, जिसे धोना हमेशाके लिए असभव होगा। अगर सारे सरकारी दफ्तरोंमे 'प्रांतीय भाषाके इस्तेमाल करनेका कदम इसी वक्त उठाया जाय तो अंतर्प्रांतीय जबानका उपयोग तो उसके बाद तुरत ही होने लगेगा। प्रांतोंको केंद्रसे सबध रखना ही पडेगा और अगर केंद्रीय सरकारने शीघ्र ही यह महसूस करनेकी समझदारी की कि उन मुट्ठीभर हिंदुस्तानियोंके लिए, हिंदुस्तानकी संस्कृतिको नुकसान नही पहुंचाना चाहिए, जो इतने आलसी है कि जिस जबानको, किसी भी पार्टीका दिल दुखाए बगैर सारे हिंदुस्तानमे आसानीसे अपनाया जा सकता है, उसे भी नही सीख सकते। तो ऐसी हालतमे प्रातीय सरकारे केंद्रीय सरकारसे अग्रेजीमे अपना व्यवहार रखनेका साहस नही कर सकेगी। मेरा मतलब यह है कि जिस तरह हमारी आजादीको जबरदस्ती छीननेवाले अग्रेजोकी राजनैतिक हुकूमतको हमने सफलतापूर्वक इस देशसे निकाल दिया, उसी तरह हमारी सस्कृतिको दबानेवाली अंग्रेजी जबानको भी हमें यहांसे निकाल बाहर करना चाहिए। हां, व्यापार और राजनीतिकी अंतर्राष्ट्रीय भाषाके नाते अग्रेजीका अपना स्वाभाविक स्थान हमेशा कायम रहेगा।

नई दिल्ली, ११-९-'४७

: २४ :

शरणार्थी-कैंपमें सफाई

आज राजकुमारी अमृतकौर और डा० सुशीला नैयर मुझे अर्विन अस्पतालमे ले गई थी। वहापर जात वगैरहका कोई भेदभाव रखे वगैर सिर्फ जख्मी लोगोका ही इलाज किया जाता है। मरीजोमे एक बच्चा था, जिसकी उमर मुश्किलसे पाच वरसकी होगी। गोली लगनेसे उसके बदनपर घाव हो गया था। डाक्टर और नर्सोपर कामका भारी वोझ था, वहां मुसलमान मरीजोकी तादाद ज्यादा थी, क्योंकि हिंदू और सिक्ख मरीजोको दूसरे अस्पतालोमे भेज दिया गया था।

राजकुमारीसे मुझे पता चला कि शरणार्थी कैंपोमे पाखाने साफ करनेके लिए भंगी भेजना करीव-करीव नामुमकिन है। इससे हैजे-जैसी छूतकी बीमारीके फैलनेका डर है। मेरी रायमे शरणार्थियोको अपने-अपने कैंपोमे खुद सफाई करनी चाहिए। पाखाने भी उन्हे ही साफ करने चाहिए और कैंप-व्यवस्थापककी स्वीकृतिसे कुछ उपयोगी काम करना चाहिए। सिर्फ उन लोगोको छोड़कर, जो शारीरिक मेहनत नहीं कर सकते, वाकी सवपर यह नियम लागू होता है। सारे शरणार्थी-कैंप सफाई, सादगी और मेहनतके नमूने होने चाहिए।

आज पाकिस्तानके हाई कमिश्नर मुझसे मिलने आए थे। उनका सांप्रदायिक शांति और दोस्तीमे पक्का विश्वास है।

सिक्ख भाई आज मुझसे दो वार मिले। भारत-सरकारके कृपाण-संबंधी हुक्मसे वे दु.खी थे। मैं इसके बारेमे सरकारसे चर्चा करूं, उससे पहले उन्होंने कृपाणकी अपनी जरूरतके बारेमें मुझे लिखकर देनेका वचन दिया है। उन्होने आगे कहा कि उनके खिलाफ लगाए गए इलजामोंको बहुत नमक-मिर्च लगाकर कहा गया है। हिंदुस्तानी सघमे रहनेवाले मुसलमानोंसे या किसी दूसरी जातसे हमारा कोई झगड़ा नही हो सकता। हम तो देशमे कानूनको माननेवाले नागरिक बनकर ही रहना चाहते हैं।

नई दिल्ली, ११–९–'४७

: २५ :

मेरी मूर्ति !

बंबईमें किसी आम जगहपर दस लाख रुपए खर्च करके मेरी मूर्ति खड़ी करनेकी बात चल रही है। इस सबंधमे मेरे पास कई आलोचनाभरे पत्र आए है। उनमेसे कुछ तो नम्र हैं और कुछ इतने गुस्सेभरे है मानो मै ही अपनी मूर्ति बनवाकर खड़ी करनेका गुनाह कर रहा होऊं ! राईका पर्वत बना देना शायद इन्सानका स्वभाव है। असल बातकी छानबीन तो सिर्फ समझदार लोग ही करते है। इस मामलेमे अलोचनाके लिए जगह है। मुझे कहना होगा कि मुझे तो मेरा फोटो भी पसद नही। कोई मेरा फोटो खीचता है तो मुझे

अच्छा नही लगता। फिर भी कोई-कोई खीच ही लेते है। मेरी मूर्तिया भी बनी है। इसके बावजूद अगर कोई पैसे खर्च करके मेरी मूर्ति खडी करनेकी बात करता है तो यह मुझे अच्छा नही लग सकता और खास करके इस वक्त, जब कि लोगोंको खानेको अनाज नही मिलता, पहननेको कपडे नही मिलते। हमारे घरोमे, गलियोमे गदगी है, चालोमे (बस्तियोमें) इन्सान किसी तरह जिंदगी बिता रहे है तब शहरोको कैसे सजाया जा सकता है? इसलिए मेरी सच्ची मूर्ति तो मुझे रुचनेवाले काम करनेमे है। अगर ये रुपए, ऊपर बताए हुए कामोमे खर्च किए जाय, तो जनताकी सेवा हो और खर्च किए हुए रुपयोका पूरा बदला मिले। मुझे उम्मीद है कि यह पैसा इससे ज्यादा लोक-सेवाके कामोमे खर्च किया जायगा। कल्पना कीजिए कि इतने रुपए अगर अधिक अनाज पैदा करनेमे लगाए जाय तो कितने भूखोका पेट भरे!

नई दिल्ली, १३–९–'४७

: २६ :

राष्ट्रीय सेवक-संघके सदस्योंसे

दिल्लीमे आते ही मैंने सघके मुख्य कार्यकर्ताओसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की थी। संघके विरुद्ध मेरे पास काफी शिकायते यहां और कलकत्तामे आई थी। सघके साथ मेरा बरसोसे संबंध है। स्व० श्रीजमनालालजी बरसों पहले मुझे वर्धामे

संघके एक कैंपमे ले गए थे। उस कैंपको देखकर मैं बहुत खुश हुआ था। वहां कडा अनुशासन था। सादगी थी और सवर्ण व असवर्ण सब समान थे। संघको चलानेवाले श्रीहेडगेवारजी बहुत बडे सेवक थे और सेवाके लिए ही जीते थे। वे तो चले गए, लेकिन संघकी ताकत दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। मैं तो हमेशासे यह मानता आया हू कि जिस संस्थामें सच्चा त्यागभाव रहता है, उसकी ताकत बढती ही है। अगर त्यागभावके साथ शुद्ध भावना भी रहे तो वह संस्था जगतके लिए फायदेमंद होती है। शुद्धता न हो तो सिर्फ त्यागसे जगतको फायदा नही पहुंचता। शुद्ध त्यागके साथ शुद्ध ज्ञान और शुद्ध भावना न हो तो काम पूरा नही होता, गिरावट आ जाती है।

आप लोगोसे भी मैं अपरिचित नही हूं। मै तो इसी वाल्मीकि-बस्तीमे रहता और हमेशा देखा करता था कि आप किस नियम और किस ध्यानसे अपनी प्रार्थना और व्यायाम किया करते थे। आपकी प्रार्थनामे हिंद माताके और हिंदू-धर्मके गौरवकी बात है। मै तो दक्षिण अफ्रीकासे यह दावा करता आया हू कि मै सनातनी हिंदू हूं। मै 'सनातन' का मूल अर्थ लेता हू। हिंदू शब्दका सच्चा मूल क्या है, यह बहुत कम लोग जानते है। यह नाम हमे दूसरोंने दिया और हमने उसे अपना लिया। धर्मके कई अभ्यासी कहते है कि हिंदू-धर्म क्यों कहते हो? इसे आर्य-धर्म कहो या सनातन धर्म कहो। हिंदू-धर्मकी विशेषता रही है, उसकी सहिष्णुता और जिसके संपर्कमे आए उसकी अच्छी चीजोको पचा लेनेकी ताकत।

आपके गुरुजीसे यहां मेरी मुलाकात हुई। उन्होंने कहा--

"हमारे सघमे गदगी हो नही सकती। हम हिंदू-धर्मकी उन्नति चाहते है, पर किसीको नुकसान पहुंचाकर नही। स्वरक्षाके लिए हम हमेशा तैयार रहते है। संघमे सब भले ही है, ऐसा दावा हम नही कर सकते। लेकिन हमारी नीति क्या है, यह मैने आपको सुना दिया।" मैने आपके गुरुजीसे कहा कि अगर यह सही है तो मै डंकेकी चोट दुनियाको यह सुना सकता हूं कि आप लोग भले है। आपके गुरुजीने यह भी कहा कि बुरे काम करनेवालो, दभियो और हुकूमतको गिराने-की चेष्टा करनेवालोंके साथ संघका संबध नही है। मैने कहा कि हुकूमत किसकी मिटावेगे? हुकूमत तो हमारी अपनी है। हिंद यूनियनमे ज्यादा संख्या हिंदुओकी है। इसमें कोई शर्मकी बात नही। लेकिन अगर हम यह कहे कि यहा हिंदुओके सिवा दूसरा कोई रह ही नही सकता और कोई रहे भी तो उसे हिंदुओका गुलाम बनकर रहना होगा, तो यह गलत बात है। हिंदू-धर्म ऐसा नही सिखाता। मेरे हिंदू-धर्ममे सब धर्म आ जाते है। सब धर्मोका निचोड हिंदू-धर्ममे मिलता है। अगर हिंदू-धर्म सबको हजम करनेका काम न करता तो वह इतना ऊचा न उठ सकता। सब धर्मोमे उतार-चढ़ाव तो आता ही है। जबसे हिंदू-धर्ममे अस्पृश्यताको स्थान मिला तबसे हम गिरने लगे। इससे हमे कितना नुकसान हुआ, उसे मै यहां नही बताऊंगा। अगर अस्पृश्यता या छूआ-छूतका मैल बना रहा तो हमारे धर्मका नाश हो जायगा। इसी तरहसे अगर हम कहे कि हिंदुस्तानमे सिवा हिंदुओंके सबको गुलाम होकर रहना है, या पाकिस्तानवाले यह कहे

कि पाकिस्तानमे सिवा मुसलमानोंके सबको गुलाम बनकर रहना है तो यह चीज चलेगी नही । ऐसा कहकर दोनों अपना धर्म छोड़ते है और दोनों अपने-अपने धर्मका नाश करते है ।

मुल्कके टुकड़े तो हो चुके । सबने यह मंजूर किया, तभी तो ऐसा हुआ । अब उसे दुरुस्त करनेका तरीका क्या है ? एक हिस्सा गंदा बने तो क्या दूसरा भी वैसा ही करे ? बुराईका सामना बुराई द्वारा करनेसे, फिर वह समान मात्रामें हो, या ज्यादा या कम मात्रामे, बुराई मिटती नही । बुराईके सामने भलाई करनेसे ही बुराई मिटती है । मै तो जो मेरे दिलमे है, वही बात कह सकता हूं ।

आज हिंदुस्तानकी नाव बड़े तूफानमेसे गुजर रही है । हमारे जो नेता हुकूमतकी बागडोर लेकर बैठे है, उनसे बढ़कर हमारे पास कोई नही है । अगर कोई हो तो लाइए । मैं सिफारिश करूंगा कि हुकूमतकी बागडोर उनके हाथमे दे दी जाय । आखिर सरदार तो बूढ़े हो गए है । जवाहरलालजी बूढ़े नही है, लेकिन बूढ़े-से दीखने लगे है । वे दोनों हिम्मतके पुतले है । भय-जैसी उनके पास कोई चीज नही है । वे यथाशक्ति मुल्ककी सेवा कर रहे है ।

अगर हिंदुस्तानके सब हिंदू एक दिशामें जाना चाहें, चाहे वह गलत ही क्यों न हो, तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता । लेकिन कोई भी आदमी, फिर वह अकेला ही क्यों न हो, उनके खिलाफ अपनी आवाज उठा सकता है । उन्हे चेतावनी दे सकता है । वही मै आज कर रहा हूं ।

आपका फर्ज है कि आप मन, वचन और कर्मसे अपनी

सरकारको मदद दें। अगर मै कोई बुरी बात कहता होऊं तो मुझे बताइए। मुझसे कहा जाता है कि आप मुसलमानोके दोस्त है और हिंदू व सिक्खोंके दुश्मन। मुसलमानोंका दोस्त तो मै १२ वरसकी उम्रसे रहा हूं और आज भी हूं; लेकिन जो मुझे हिंदुओं और सिक्खोंका दुश्मन कहते है, वे मुझे पहचानते नहीं। मेरी रग-रगमे हिंदू-धर्म समाया हुआ है। मै धर्मको जिस तरह समझता हूं, उसी तरह उसकी और हिंदुस्तानकी सेवा पूरी ताकतसे कर रहा हूं। मेरे दिलकी बात मैने आपको सुना दी है। हिंदुस्तानकी रक्षाका, उसकी उन्नतिका यह रास्ता नही कि जो बुराई पाकिस्तानमे हुई उसका हम अनुकरण करें। अनुकरण हम सिर्फ भलाईका ही करें।

अगर पाकिस्तान बुराई ही करता रहा तो आखिर हिंदुस्तान और पाकिस्तानमे लड़ाई होनी ही है। मेरी बात कोई सुने तो यह संकट टल सकता है। अगर मेरी चले तो न तो मैं फौज रखूं और न पुलिस। मगर ये सब हवाई बाते हैं। मै हुकूमत नही चलाता। आज जो चल रहा है, उसमे तो लड़ाईका ही सामान भरा है। क्यो पाकिस्तानसे हिंदू और सिक्ख भाग रहे हैं? पाकिस्तानवाले उन्हे क्यों नही मनाते कि यही रहो। अपना घर न छोड़ो। आपकी इज्जत और जान-मालकी हम हिफाजत करेंगे? क्यों पाकिस्तानमे एक छोटी-सी लड़कीकी तरफ भी कोई बदनजरसे देखे? इसी तरह क्यों न एक-एक मुसलमान हिंद-यूनियनमे पूरी तरह सुरक्षित रहे?

आपकी संख्या बड़ी है। आपकी ताकत हिंदुस्तानकी बरबादीमें लगे तो वह बुरी बात होगी। आपपर जो इलजाम

लगाया जाता है, उसमें कुछ भी सच है या नही, यह मैं नहीं जानता। मैंने तो सिर्फ बता दिया कि किसी चीजका नतीजा क्या हो सकता है। यह संघका काम है कि वह अपने सही कामोंसे इस इलजामको झूठ साबित कर दे।

सवाल—हिंदू-धर्ममें पापीको मारनेकी इजाजत है या नहीं?

जवाब—है भी और नही भी है। जो खुद पापी है, वह दूसरे पापीको सजा कैसे देगा? अगर सब निर्णायक बन जायं तो न्याय किसको मिलेगा? पापीको सजा देना हुकूमतका काम है। आप हुकूमतसे कह दे कि यह आदमी पापी है, दगाबाज है। इसको सजा दीजिए। हुकूमत तो अहिंसा माननेवाली है नही। वह दगाबाजोको गोलीसे उडा देगी। मगर यह कह देना कि सारे मुसलमान दगाबाज है, ठीक नही है, यह हिंदू-धर्म नही है।[1]

नई दिल्ली, १६–९–'४७

: २७ :

भारतीय संघके मुसलमानोंसे

कुछ मुसलमान दोस्तोंने गांधीजीसे कहा कि वे दिल्ली शहरके मुस्लिम मोहल्लोंमें जायं, ताकि जो मुसलमान अभी वहां रह रहे हैं, वे

---

[1] भंगी बस्ती (नई दिल्ली) में राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघके स्वयं-सेवकोंके समक्ष दिया गया भाषण।

डरकर अपने मकान खाली न कर दें। गांधीजी एकदम राजी हो गए और उन्होंने शामको दरियागंज मुहल्लेसे अपना यह काम शुरू किया। मकानों और दूकानोंकी उजाड़ शक्ल देखकर गांधीजीको दुःख हुआ। इनमेंसे कुछ दूकानें लूट ली गई थीं। करीब सौ मुसलमान आसफअली साहबके मकानमें इकट्ठा हो गए थे। उन्होंने गांधीजीसे कहा कि हम हिंदुस्तानमें यूनियनके वफादार नागरिक बनकर रहना चाहते हैं, मगर हम खास तौरपर पुलिसके पक्षपाती बर्तावसे अपनी हिफाजतकी गारंटी चाहते हैं। अपनी हालतका बयान करते हुए कुछ लोगोंकी आंखोंमें आंसू आ गए थे। उन्होंने कहा कि पाकिस्तानके मुसलमानोने जो कुछ किया उसकी हम ताईद नहीं करते, मगर उनके पापोका बदला बेगुनाहोसे नहीं लिया जाना चाहिए। उनके सामने बोलते हुए गांधीजीने कहा—

आप लोग वहादुर वनिए और मजबूतीके साथ कहिए कि चाहे जो हो, हम अपने मकान नही छोडेंगे। आपको अपनी हिफाजतके लिए एक भगवानको छोड़कर और किसीपर मुनहसिर नही रहना चाहिए। मैं अपनी ताकतभर सव कुछ करनेके लिए यहांपर ठहरा हुआ हूं। मैंने नोआखाली, विहार कलकत्ता और अव दिल्लीमे अपने आपको 'करने या मरने' के दांवपर लगा दिया है। जवतक सच्ची शांति कायम न हो और हिंदू, सिक्ख और मुसलमान, पुलिस और फौजकी मददके वगैर आपसमे भाई-भाईकी तरह रहना तय न कर लें तवतक जो लोग अपने-अपने घर छोड़कर चले गए है, उनसे मैं वापिस आनेके लिए नही कहूंगा।

मैं जिस तरह हिंदुओ और दूसरोका दोस्त और सेवक हूं उसी तरह मुसलमानोका भी हू। मैं तवतक चैन नहीं लूगा जवतक हिंद-यूनियनका हर एक मुसलमान, जो यूनियनका

वफादार नागरिक बनकर रहना चाहता है, अपने घर वापिस आकर शांति और हिफाजतसे नही रहने लगता और इसी तरह हिंदू और सिक्ख भी अपने-अपने घरोंको नही लौटते। मैंने दक्षिण अफ्रीका और हिंदुस्तानमे जिंदगीभर मुसलमानोंकी सेवा की है। मै खिलाफतके दिनोंकी हिंदू-मुस्लिम-एकताको भूल नही सकता। वह एकता टिकी नही, मगर उसने यह दिखा दिया कि हिंदुओं और मुसलमानोंमे टिकाऊ दोस्ती कायम हो सकती है। इसीके लिए मै जीता हूं और काम करता हूं। मै यह देखनेके लिए पंजाव जा रहा था कि जो हिंदू और सिक्ख पाकिस्तानसे खदेड़ दिए गए है, वे अपने-अपने घरोंको वापिस लौट सके और वहां हिफाजत और इज्जतसे रह सकें। मगर रास्तेमे मै दिल्लीमे रोक लिया गया और जबतक हिंदुस्तानकी इस राजधानीमे शांति कायम नही होती तबतक मै यही रहूंगा। मै मुसलमानोको यह सलाह कभी नही दूगा कि वे लोग अपने घर छोड़कर चले जायं, भले ही ऐसी बात कहनेवाला मै अकेला ही क्यों न होऊं। अगर मुसलमान लोग हिंदुस्तानके कानून माननेवाले और वफादार नागरिक वनकर रहे तो उन्हे कोई भी नही छू सकता। मैं सरकार नहीं हूं, मगर जो सरकारमे है, उनपर मेरा असर है। मैंने उन लोगोंसे इस विषयपर लंबी चर्चाएं की है। वे इस बातको नही मानते कि हिंदुस्तानमें मुसलमानोंके लिए कोई जगह नही है, या अगर मुसलमान यहां रहना चाहे, तो उन्हे हिंदुओंका गुलाम रहकर रहना पड़ेगा। कुछ लोगोंने कहा है कि सरदार पटेलने मुसलमानोंके पाकिस्तानमे जानेकी

बातकी ताईद की है। जब सरदारसे मैंने यह बात कही तो वे गुस्सा हुए। मगर साथ ही उन्होंने मुझसे कहा कि इस शकके लिए मेरे पास कारण हैं कि हिंदुस्तानके मुसलमानोंकी बहुत बड़ी तादाद हिंदुस्तानके प्रति वफादार नही है। ऐसे लोगोंका पाकिस्तानमे चले जाना ही ठीक होगा। मगर अपने इस शकका असर सरदारने अपने कामोपर नही पडने दिया। मैं पूरी तौरपर मानता हू कि जो मुसलमान यूनियनके नागरिक बनना चाहते है, उन्हे सबसे पहले यूनियनके प्रति वफादार होना ही चाहिए और उन्हे अपने देशके लिए सारी दुनियासे लड़नेके लिए तैयार रहना चाहिए। जो लोग पाकिस्तान जाना चाहते है, वे ऐसा करनेके लिए आजाद है। मै सिर्फ यही चाहता हूं कि एक भी मुसलमान, हिंदुओं या सिक्खोंके डरसे यूनियन न छोड़े। दिल्लीके मुसलमानोंने अपने लिखित ऐलानके जरिए मुझे भरोसा दिलाया है कि वे हिंदुस्तानी संघके वफादार नागरिक है। जिस तरह मैं दूसरोंसे उम्मीद करता हूं कि वे मेरी बातोंपर भरोसा करे, उसी तरह मैं भी उनकी बातोंपर भरोसा करूंगा। ऐसी हालतमें सरकारका फर्ज है कि वह इन लोगोंकी हिफाजत करे। अगर मुझे मुसलमानोको हिफाजतसे रखनेमे कामयाबी न मिली, तो कम-से-कम मै जिंदा नही रहना चाहूंगा। बुराई जहां कही भी हो, उसे तो खत्म करना ही होगा। भगाई हुई औरतों-को लौटाया जाय और जबरदस्ती धर्म बदलनेके मामलोंको रद समझा जाय। पाकिस्तानके हिंदू और सिक्ख और पूर्वी पजाबके मुसलमान फिरसे अपने-अपने घरोंमे बसाए जायं।

पाकिस्तान और यूनियनमें वे ऐसी हालत पैदा करें कि एक छोटी लडकी भी अपने आपको असुरक्षित न समझे, फिर उसका चाहे जो मजहब हो। खलिकुज्जमा साहब और मुजफ्फर नगरके मुसलमानोके बयान पढ़कर मुझे खुशी हुई है। मगर पाकिस्तान रवाना होनेसे पहले मुझे दिल्लीकी आग बुझानेमें मदद करनी ही होगी। अगर हिंदुस्तान और पाकिस्तान हमेशाके लिए एक दूसरेके दुश्मन बन जायं और आपसमें जंग छेड दे, तो ये दोनो ही उपनिवेश नष्ट हो जायंगे और बड़ी मुश्किलोसे हासिल की हुई अपनी आजादीको बहुत जल्दी खो देगें। वह दिन देखनेके लिए मैं जिंदा नही रहना चाहता। मौलाना अहमद सईदने मुसलमानोसे अपील की है कि वे अपने बगैर लाइसेंसके हथियार सरकारको सौप दे।

दरियागंज छोड़नेसे पहले लोग गांधीजीको कुछ पर्दानशीन औरतोंके पास ले गए। उन औरतोंने कहा कि हमारी सारी उम्मीदें आपपर लगी हुई है। गांधीजीने उन्हें जवाब दिया :

आपको एक खुदाको छोड़कर और किसीपर मुनहसिर नही रहना चाहिए। अपनी ओरसे मैं भरसक कोशिश कर रहा हूं।

दरियागज-मस्जिद दिल्ली, १९–९–'४७

: २८ :

मेरा धर्म

यह शीर्षक सिर्फ इस बातपर विचार करनेके लिए है कि

'हरिजनसेवक' वगैरह अखवार चलाने न चलानेके वारेमे मेरा धर्म क्या है। मेरे सवालके जवावमे पाठकोकी तरफसे मेरे पास काफी तादादमे पत्र आए है। उनमेसे ज्यादातर लोग चाहते है कि ये अखवार जारी रहे। इन लेखकोका भाव यह है कि इस वक्त उन्हे अलग-अलग विपयोपर मेरा मत जाननेकी इच्छा है। यानी मेरे मरनेपर इन अखवारोंकी जरूरत रहेगी या. नही, यह एक सवाल है।

मेरी मौत तीन तरहसे हो सकती है :

१. यह शरीर छूट जाय।
२. आंखकी पुतली अपना काम करती रहे, मगर शरीर या मन किसी कामके न रहे।
३. यह शरीर टिका रहे, मन और वुद्धि भी काम देते रहें, मगर मै जनसेवाके 'सारे क्षेत्रोसे हट जाऊं।

पहले प्रकारकी मौत तो हर देहधारीके लिए है— कोई आज मरता है तो कोई कल। इसलिए इसके वारेमें क्या कहा जा सकता है ?

दूसरे प्रकारकी मौत तो किसीको न मिले! ऐसी जिंदगी धरतीपर वोझकी तरह है। ऐसा होता हो या' न होता हो, मगर अपने लिए तो मैं ऐसी मौत नही चाहता।

अव विचारने लायक तीसरी मौत ही रह जाती है। कई पाठक मानते है कि मेरा प्रवृत्तिकाल अव वीता हुआ समझना चाहिए। पंद्रहवी अगस्तके वादसे नया युग शुरू हुआ है। उसमे मेरी जगह कही भी नही है। इस कथनमे मुझे गुस्सा

नजर आता है, इसलिए इसका मुझपर कोई असर नहीं। ऐसी सलाह देनेवाले बहुत थोड़े हैं।

इसलिए मुझे इस सवालपर स्वतंत्र विचार करनेकी जरूरत है। 'हरिजन' अखबार नवजीवन ट्रस्टकी देखरेखमें निकलते हैं। ट्रस्टी-मंडल चाहे तो इन अखबारोंको आज वंद कर सकता है। उसे पूरा अधिकार है। मगर वे नही चाहते कि ये बंद हों। मेरा जीवन लोकसेवाके काममें ही बीत रहा है। अकर्ममें भी कर्म देखनेकी शक्ति अभी मुझमें नही है। इसलिए जबतक सांस चलती है तबतक तो मेरे काम जारी रहेंगे। मेरी प्रवृत्तियों-को अलग-अलग हिस्सोंमें बांटा नही जा सकता। सबका मूल एक ही है, फिर उसे सत्य कहो या अहिंसा। इसलिए ये अखबार जैसे चल रहे हैं, वैसे ही चलते रहेंगे। "मेरे लिए एक कदम काफी है।[1]"

नई दिल्ली, २२-९-'४७

: २६ :

उपवासका अर्थ

एक भाई लिखते हैं—

"मुझे लगता है कि हर कदमपर अपने प्राणोंकी बाजी लगा देना

---

[1] मूल गुजरातीमें इस वाक्यके लिए यह चरण है—"मारे एक डगलुं बस थाय।"

आपके लिए आखिरी और कुदरती इलाज भले हो, मगर उसका उपयोग मरीजको इंजेक्शन देकर या उसमें प्राणवायु भरकर उसे जिंदा रखनेकी कोशिश करने-जैसा ही है।"

ये शब्द प्यारसे और दु:खसे लिखे गए है। फिर भी मुझे कहना पड़ेगा कि लेखकने इस विपयपर पूरा विचार नही किया। मेरा भला चाहनेवाले दूसरे वहुतसे भाइयोंका भी शायद यही विचार हो, यह समझकर मै खुले तौरपर इसका जवाव देता हूं।

खत लिखनेवाले भाईकी उपमा यहां लागू नही होती। प्राणवायु भरने और सुई लगानेका इलाज सिर्फ वाहरी इलाज है। और उसका प्रयोग शरीरपर, उसे कुछ ज्यादा समयतक टिकाए रखनेके लिए ही होता है। इसलिए वह क्षणिक है। वास्तवमे देखा जाय तो इस इलाजके न करनेमे इन्सान कुछ खोता नही है। शरीरको अमर तो किया ही नही जा सकता। उसकी उमर दो दिन वढ़ा देनेसे कोई वडा फायदा नही होता।

उपवास किसीके शरीरपर असर डालनेके लिए नही किया जाता। वह तो दिलको छूता है। इसलिए उसका सवध आत्मासे है। इससे उपवासका असर क्षणिक नही होता। वह टिकाऊ होता है। उपवास करनेवालेमे इसके लिए नैतिक योग्यता है या नही, यह जुदी वात है। यहा हमे इसपर विचार नही करना है।

अपने जितने उपवासोंकी मुझे याद है, उनमेसे एक ही ऐसा था, जिसमे उपवास करनेमे तो मैने भूल नही की थी,

मगर उसमे मैंने बाहरी इलाज मिला दिया था, जो उपवासका विरोधी है। यह भूल न हुई होती तो मुझे यकीन है कि उसका नतीजा अच्छा ही निकलता। मेरा मतलब उस उपवाससे है, जो मैंने राजकोटके स्वर्गीय ठाकुर साहबके विरोधमे किया था। मै संभल गया, इसलिए अपनी भूल सुधार सका और एक भयकर नतीजा टल गया।

मेरा आखिरी उपवास कलकत्तामे २-३-४ सितंबरको हुआ था। उसका बहुत अच्छा नतीजा निकला। उसका संबंध आत्मासे होनेकी वजहसे मै उसे टिकाऊ मानता हू। मगर यह असर टिकाऊ हुआ या नही, यह तो समय ही बत-लाएगा। यह बात उपवास करनेवालेकी पवित्रतापर और उसके ज्ञानपर निर्भर है। इसकी जाच करना यहा अप्रासंगिक होगा। यह जांच मै खुद कर भी नही सकता। कोई निष्पक्ष और योग्य आदमी ही कर सकता है और वह भी मेरे मरनेके बाद।

नई दिल्ली, २५-९-'४७

: ३० :

हिंदुस्तानी

काकासाहब कालेलकर एक खतमें लिखते है—

"यूनियनके मुसलमान यूनियनके वफादार रहेंगे तो क्या वे हिंदु-स्तानी भाषाको राष्ट्रभाषा मानेंगे और हिंदी-उर्दू दोनो लिपियां सीखेंगे ?

इस बारेमें अगर आप अपनी राय नहीं बतावेंगे तो हिंदुस्तानी प्रचारका काम बहुत मुश्किल हो जायगा। मौलाना आजाद क्या अपने ख़यालात नहीं बता सकते ?"

काकासाहब जो कहना चाहते हैं वह नई बात नही है। लेकिन आजाद हिंदमे यह बात यूनियनको ज्यादा जोरोसे लागू होती है। अगर यूनियनके मुसलमान हिंदुस्तानकी तरफ वफादारी रखते हैं और हिंदुस्तानमे खुशीसे रहना चाहते हैं तो उनको दोनो लिपियां सीखनी चाहिए।

हिंदुओंकी तरफसे कहा जाता है कि उनके लिए पाकिस्तान-मे जगह नही, सिर्फ हिंदुस्तानमे है। अगर कही ऐसा मौका आवे कि पाकिस्तान और हिंदुस्तानके बीच लडाई छिड जाय तो हिंदुस्तानके मुसलमानोंको पाकिस्तानसे लडना होगा। यह ठीक है कि लडाईका मौका आना ही नही चाहिए। आखिरमे दोनो हुकूमतोंको एक-दूसरीसे मिल-जुलकर काम करना होगा। एक-दूसरीके प्रति दोस्ती होनी चाहिए। दो हकूमते होते हुए भी काफी चीजे दोनोके बीच एक ही है। अगर वे दुश्मन बन जायं तब तो कोई भी चीज एक नही हो सकती। दोनोमें दिलकी दोस्ती रहे तब तो प्रजा दोनोकी तरफ वफादार रह सकती है। यों तो दोनों राज एक ही सस्थाके सदस्य हैं। उनमे दुश्मनी हो ही कैसे सकती है? लेकिन इस चर्चामे पड़नेकी यहां कोई जरूरत नही।

हिंदुस्तानमे सबकी बोली एक ही हो सकती है। मैं तो एक कदम आगे बढकर कहता हूं कि अगर दोनों राज एक-दूसरेके दुश्मन नही, बल्कि दिलसे दोस्त बनते हैं तो दोनों तरफ

सब नागरी और उर्दू लिपिमें लिखेगे। इसका मतलब यह नही कि उर्दू जबान या हिंदी जबान रह ही नही सकती; लेकिन अगर दोनोको या सब धर्मियोको दोस्त बनना है तो सबको हिंदी और उर्दूके सगमसे जो आम बोली बन सकती है, उसमे ही बोलना है। और, उसी बोलीको उर्दू या नागरी लिपिमें लिखना है। कम-से-कम हिंदुस्तानमें रहनेवाले मुसलमानोका इम्तिहान तो इसमे हो जाता है और यही बात हिंदू, सिक्ख वगैरहको भी लागू होती है। लेकिन मै ऐसा नही कहूगा कि मुसलमान अगर दोनों लिपिया नही सीखते तो उर्दू और हिंदीके मेलसे बननेवाली सबकी बोली राष्ट्रभापा हो ही नही सकती। मुसलमान दोनो लिपियां सीखे या न सीखे, तो भी हिंदू तथा हिंदुस्तानके दूसरे धर्मियोको दोनों लिपियां सीखनी चाहिए। आजकी जहरीली हवामे यह सादी-सी बात भी शायद लोग नही समझ सकेंगे। उर्दू लिपिका और उर्दू लफ्जो-का हिंदू जान-बूझकर बहिष्कार करना चाहे तो कर तो सकते है, लेकिन उससे हम बहुत कुछ खोएंगे। इसलिए जिन लोगोंने हिंदुस्तानी प्रचारका काम हाथमें लिया है, फिर वे दो-चार हों या करोड़ों, वे इस सीधी-सादी बातको छोड़ नही सकते।

मैं इसमें भी सहमत हूं कि मौलाना अबुलकलाम आजाद साहब और हिंदुस्तानके दूसरे ऐसे मुसलमानोको ऐसी चीजोमें नमूना बनना चाहिए। अगर वे न बने तो कौन बनेगा? हमारे सामने बहुत मुश्किल वक्त आया है। ईश्वर हमको सन्मति दे!

नई दिल्ली, २७–९–'४७

: ३१ :

भयंकर उपमा

एक भाई, जिनके नामसे जान पड़ता है कि उनकी मातृ-भाषा हिंदी है, अंग्रेजीमें लिखे गए अपने खतमें मुझे इस तरह लिखते हैं—

"आपने जो लगातार इस तरहकी अपीलें की हैं कि मुसलमानोंको अपने भाई समझो और उनकी हिफाजतकी गारंटी दो, ताकि वे यहांसे पाकिस्तान न चले जाएं, उसके सिलसिलेमें मैं एक उदाहरण देता हूं— जाड़ेके दिनोंमें एक बार कोई आदमी कहीं जा रहा था। रास्तेमें उसे एक सांप पड़ा हुआ दिखाई दिया, जो ठंडसे ठिठुर गया था। उस आदमीको दया आई और सांपको गर्मी पहुंचानेके इरादेसे उसने उसे उठाकर अपनी जेबमें रख लिया। गर्मी मिलनेसे सांप सचेत हुआ और सबसे पहला काम जो उसने किया वह यह था कि उसने अपने रक्षकके ही शरीरमें अपने जहरीले दांत गड़ा दिए और उसे मार डाला।"

इन भाईने गुस्सेमें आकर इस भयंकर उपमाका उपयोग किया है। एक इन्सानको, चाहे वह कितनाही गिरा हुआ हो, जहरीले सांपकी उपमा देना और फिर उसके साथ वहशियाना बरताव करना वास्तवमें बुरी बात है। थोड़े या ज्यादा लोगोंकी गल्तियोंकी वजहसे उस धर्मके करोड़ों इन्सानोंको जहरीले सांप समझना मुझे हद दरजेका पागलपन जान पड़ता है। खत लिखनेवाले भाईको याद रखना चाहिए कि ऐसे पागल और कट्टर मुसलमान पड़े हैं, जो हिंदुओंके बारेमें यही उपमा

काममें लाते हैं। मैं नहीं समझता कि कोई भी हिंदू सांप कहलाना पसंद करेगा।

किसी आदमीको भाई समझनेका यह मतलब नहीं है कि जब वह दगाबाज साबित हो तब भी उसपर भरोसा किया जाय। और इस डरसे किसी आदमीको और उसके परिवारको मार डालना बुजदिलीकी निशानी है कि वह आदमी दगाबाज साबित हो सकता है। जरा ऐसे समाजका चित्र अपने सामने खड़ा कीजिए, जिसमें हर आदमी अपने साथीका न्यायाधीश बनता है। मगर हिंदुस्तानके कुछ हिस्सोंमें हमारी ऐसी ही करुण स्थिति हो गई है।

आखिरमें मैं सांपोंकी जातिके साथ इन्साफ करनेके लिए लोगोंमें फैले हुए एक मामूली वहमको सुधार दूं। जानकार लोग कहते हैं कि ८० फीसदी सांप पूरी तरह निर्दोष होते हैं और कुदरतके उपयोगी जीवोंमें उनकी गिनती की जा सकती है।

नई दिल्ली, ३–१०–'४७

: ३२ :

उदासीका कोई कारण नहीं

बरसगांठकी मुबारकबादीके अनेक तार मेरे पास आए हैं। उनमेंसे एकमें मुझे यह सलाह दी गई है—

"क्या मैं कहूं कि मौजूदा परिस्थितिमें आपको उदास नहीं होना

चाहिए ? मुझे तो लगता है कि जो खून-खराबी आजकल हो रही है, वह ईश्वरी योजनाको हटानेके लिए बुरी ताकतोंकी आखिरी कोशिश है। दुनियामें जो विषम परिस्थिति बढ़ती और फैलती जा रही है उसे अहिंसाके द्वारा मिटानेमें हिंदुस्तानको ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा लेना है। ईश्वरी योजनाको पूरी करनेके लिए आज दुनियामें आप अकेले व्यक्ति है।"

यह तार मेरे प्रति प्रेमकी निशानी है, ज्ञानकी नही। आइए, हम इसकी छानबीन करे।

मेरी आजकी मानसिक स्थितिको उदासी कहना गलती है। मैंने सिर्फ सचाईका बयान किया है। मुझमे ऐसा समझने-का झूठा अभिमान नही है कि ईश्वरी योजना सिर्फ मेरे ही द्वारा पूरी हो सकती है। मै ईश्वरके हाथमे, उसकी योजना पूरी करनेके लिए जितना योग्य हो सकता हू, उतना ही अयोग्य क्यो नही हो सकता ? कमजोर प्रजाके प्रतिनिधिके रूपमे भगवानने मुझे साधन भले बनाया हो, मगर आजाद बनी हुई और ताकतवर प्रजाके प्रतिनिधिके रूपमे मै अयोग्य क्यों नही साबित हो सकता ? मुमकिन है कि आखिरके बहुत बडे कामके लिए मुझसे ज्यादा बलवान और ज्यादा दूरदर्शी कोई दूसरा आदमी उस ईश्वरके मनमें हो ! मै जानता हू कि ये सब महज कल्पनाएं है। ईश्वरकी मर्जी पूरी तरहसे जाननेकी ताकत उसने किसीको नही दी। दयाके इस अपार सागरमे हम सब बूदके बराबर है। बूद भला सागरको कैसे नाप सकती है ?

बेशक, आदर्श तो यह होना चाहिए कि मैं न तो एक सौ

पच्चीस बरस जीनेकी इच्छा रखूं और न आजकी विरोधी हालतोंको देखकर मरना चाहूं। अगर मै आदर्शतक पहुंचा होऊं तो मेरी सारी इच्छाएं भगवानकी महान् इच्छामे समा जानी चाहिए। मगर आदर्श हमेशा आदर्श ही रहेगा। आदर्श जब सच्चा होता है तब वह आदर्श नही रह जाता। इसलिए इन्सान सिर्फ इतना ही कर सकता है कि वह आदर्शतक पहुंचनेमें अपनी कोई कोशिश बाकी न रखे। अपने बारेमे मै इतना दावा कर सकता हूं कि मुझमे जितनी भी ताकत है, उसका पूरा उपयोग मै आदर्शके नजदीक पहुंचनेमे कर रहा हूं।

अगर मैंने १२५ बरस जीनेकी अपनी इच्छाको खुले आम जाहिर करनेकी ढिठाई की थी तो इस विषम परिस्थितिमें उतने ही खुले तौरपर यह इच्छा बदलनेकी नम्रता मुझमें होनी ही चाहिए। मैंने इससे न कुछ ज्यादा किया, न कम। न इसके पीछे किसी किस्मकी उदासी ही थी। शायद 'लाचारी' शब्द मेरी हालतको ज्यादा सही रूपमे बयान कर सकता है। इस लाचारीकी हालतमें इस क्षणिक और दुःखी दुनियासे भगवान मुझे उठा ले, ऐसी पुकार मैं जरूर करता हूं। मै उससे मांगता हूं कि जो पागलपन हम लोगोंमे इस समय फैल रहा है, उसका साक्षी मुझे न बनाए, फिर भले ही इस पागलपनसे भरा हुआ इन्सान अपनेको मुसलमान, हिंदू या दूसरा कोई भी धर्म माननेवाला कहनेकी ढिठाई क्यों न करता हो। फिर भी मेरी आखिरी प्रार्थना तो यही है और रहेगी, "हे नाथ ! मेरी नही, बल्कि तेरी ही इच्छाका

साम्राज्य इस जगतमे फैले।" अगर भगवानको मेरी जरूरत होगी तो वह अभी कुछ समयतक और इस धरतीपर मुझे रखेगा।

नई दिल्ली, ५-१०-'४७

: ३३ :

एक विद्यार्थीकी उलझन

एक विद्यार्थीने अपने शिक्षकको एक खत लिखा था। उसका नीचेका हिस्सा शिक्षकने मेरी राय जाननेके लिए मेरे पास भेजा है। विद्यार्थीका खत अंग्रेजीमें है। उसकी मातृ-भाषा क्या होगी, यह मैं नही जानता।

"मुझे दो बातोंने घेर लिया हैः एक तरफसे मेरे देश-प्रेमने और दूसरी तरफसे तेज विषय-वासनाने। इससे मुझमें विरोधी भावनाएं पैदा होती हैं और मेरे निर्णय घड़ी-घड़ी बदलते रहते हैं। मुझे अपने देशका अव्वल-दर्जेका सेवक बनना है। लेकिन साथ ही मुझे दुनियाका आनंद भी लूटना है। मुझे यह कबूल करना चाहिए कि ईश्वरमें मेरी श्रद्धा नहीं है, हालांकि कितनी ही बार मुझे ईश्वरका डर मालूम होता है। सच पूछा जाय तो सारा जीवन ही एक समस्या है। मैं क्या जानूं कि इस जीवनके बाद मेरा क्या होनेवाला है? मैंने बहुत-सी जलती चिताएं देखी हैं—आखिरी चिता मैंने अपनी मान ली है। जलती चिताके दृश्यने मुझपर भयंकर असर पैदा किया। क्या मेरे भी ऐसे ही हाल होंगे? यह विचार भी मैं सहन नहीं कर सकता। किसी घायलको देखता हूं तो मेरे सिरमें चक्कर आने लगता है। बादमें मेरी कल्पना काम करने लगती है और कहती

है कि तेरे शरीरका भी किसी दिन यही हाल होगा ! मैं जानता हूं कि किसी शरीरको इस हालतमेंसे मुक्ति नहीं मिलती। साथ ही, ऐसा लगता है कि मौतके बाद जीवन नहीं है और इसलिए मुझे मौतका डर लगता है।

"इस हालतमें मेरे पास सिर्फ दो ही रास्ते है, या तो मै इस उलझनमें फँसकर जलता रहूं या दुनियाके भोग-विलासमें पड़कर दूसरी बातोंका ख्यालतक न करूं। दूसरे किसीके सामने मैंने यह बात कबूल नहीं की, लेकिन आपके सामने कबूल करता हूं कि मैंने तो दुनियाका आनंद लूटनेका रास्ता ही पकड़ा है।

"यह दुनिया ही सच्ची है और किसी भी कीमतपर उसके मजे लूटने ही है। मेरी पत्नी अभी-अभी मरी है। मेरे मनमें उसके लिए प्रेम था। लेकिन मैं देखता हूं कि उस प्रेमकी जड़में उसका मरना नही था, बल्कि मेरा यह स्वार्थ था कि उसके मरनेसे मैं अकेला रह गया। मरनेके बाद तो कोई गुत्थी सुलझानेको रहती नही और जिंदा आदमीके लिए तो सारी जिंदगी ही एक गुत्थी है। शुद्ध प्रेममें मेरी श्रद्धा नहीं है। जिसे प्रेमके नामसे पहचाना जाता है, वह प्रेम तो सिर्फ विषय-भोगका होता है। अगर शुद्ध प्रेम-जैसी कोई चीज होती तो अपनी पत्नीके बनिस्बत अपने मां-बापमें मेरा आकर्षण ज्यादा होना चाहिए था; लेकिन हालत तो इससे बिल्कुल उलटी थी। मां-बापके बनिस्बत पत्नीमें मेरा आकर्षण अधिक था। यह सच है कि मै अपनी पत्नीके प्रति सच्चा था। लेकिन उसे मै यह गारंटी नहीं दिला सकता था कि उसके मरनेके बाद भी उसकी तरफ मेरा प्रेम बना रहेगा। उसके मरनेके बाद मुझे जो दुःख होगा, वह तो उसके न रहनेसे पैदा होनेवाली मुसीबतोंका दुःख होगा। आप इसे एक तरहकी बेरहमी कह सकते हैं। जो हो, लेकिन सच्ची हालत यही है। अब मेहरबानी करके मुझे लिखिए और रास्ता बताइए।"

खतके इस हिस्सेमे तीन बाते आती है। एक, विषय-वासना और देश-प्रेमके बीच खड़ा होनेवाला विरोध; दूसरी, ईश्वरमें और मरनेके बादके भविष्यमें अश्रद्धा, और तीसरी, शुद्ध प्रेम और विषय-वासनाका द्वंद्व-युद्ध।

पहली उलझन ठीक ढंगसे रखी मालूम होती है। उसका सार यह है कि विषय-भोगकी इच्छा सच्ची बात है और देश-प्रेम बहते प्रवाहमे खिंच जानेके समान है। यहां देश-प्रेमका अर्थ होगा सत्ता पानेके प्रपंचमे पड़ना, ताकि उसके साथ विषय-वासना पूरी करनेका मेल बैठ सके। इस तरहके बहुतसे उदाहरण मिल सकते है। देश-प्रेमका मेरा अर्थ यह है कि प्रजाके गरीब लोगोके लिए भी हमारे दिलमे प्रेमकी आग जलती हो। यह आग विषय-वासना-जैसी चीजको हमेशा जला डालती है। इसलिए मै देश-प्रेम और विषय-वासनाके बीचमे कोई झगड़ा देखता ही नही। उलटे, यह प्रेम हमेशा विषय-वासनाको जीत लेता है। ऐसे विश्व-प्रेमको जो वृत्ति तोड सके, उसे पोसनेका समय भी कहां बच सकता है? इसके खिलाफ जिस आदमीको विषय-वासनाने अपने वशमे कर लिया है, उसका तो नाश ही होता है।

ईश्वरके बारेमे और मरनेके बादके भविष्यके बारेमे अश्रद्धा भी ऊपरकी वासनामेसे ही पैदा होती है, क्योंकि यह वासना औरत और मर्दको जडसे हिला देती है। अनिश्चय उन्हे खा जाता है। विषय-वासनाके नाश हो जानेपर ही ईश्वरपर रहनेवाली श्रद्धा जीती है। दोनो चीजे साथ-साथ नही रह सकती।

तीसरी उलझनमें पहलीको ही दुहराया गया मालूम होता है। पति और पत्नीके बीच शुद्ध प्रेम हो तो वह दूसरे सब प्रेमोंकी अपेक्षा आदमीको ईश्वरके ज्यादा पास ले जाता है। लेकिन जब पति-पत्नीके बीचके प्रेममें विषय-वासना मिल जाती है तब वह मनुष्यको अपने भगवानसे दूर ले जाती है। इसमेंसे एक सवाल पैदा होता है : अगर औरत और मर्दका भेद पैदा न हो, विषय-भोगकी इच्छा मर जाय, तो शादीकी जरूरत ही क्या रह जाय ?

अपने खतमें विद्यार्थीने ठीक ही कबूल किया है कि अपनी पत्नीकी तरफ उसका स्वार्थभरा प्रेम था। जो वह प्रेम निःस्वार्थ होता तो अपनी जीवन-संगिनीके मरनेके बाद विद्यार्थीका जीवन ज्यादा ऊंचा उठता; क्योंकि साथीके मरनेके बाद उसकी यादमेंसे, पिछडे हुए लोगोंकी सेवामें उस भाईकी लगन ज्यादा बढी होती।

नई दिल्ली, १२-१०-'४७

: ३४ :

एक कड़ुआ खत

एक मुसलमान दोस्त लिखते है :—

"मैं राष्ट्रीय विचारोंवाला एक मुसलमान हूं। जिंदगीभर—अगर मेरे २१ सालके जीवनको इन शब्दोंमें जाहिर करने दिया जाय तो—मैंने हिंदू और मुसलमानकी जुबानमें कभी नहीं सोचा। मगर मेरे बड़े

भाई, वालिद और दूसरे रिश्तेदारोंने इस बातकी बड़ी कोशिश की कि मैं हिंदू और मुसलमानोंमें फर्क करूं। अपनी जातिके खिलाफ गद्दारी करनेवाला होनेकी वजहसे जालंधरके इस्लामिया कालेजमें मुझे भर्ती नहीं किया गया।

"मेरे वालिद और दूसरे रिश्तेदारोंने अप्रेलमें जालंधर छोड़ दिया, मगर मैं उनके साथ नहीं गया, क्योंकि पूर्वी पंजाब और उससे भी ज्यादा सारे हिंदुस्तानको अपना मैं वैसा ही देश मानता था जैसा कि वह दूसरे फिरकेके मेरे दोस्तोंके लिए था। मगर अगस्तकी वहशियाना वारदातोंने मुझे इतना नाउम्मीद कर दिया है कि मैं बयान नहीं कर सकता। जनवरी, १९४६में जब आजाद हिंद फौजके लोगोंपर मुकदमा चल रहा था, तब जिन लड़कोंने मेरे साथ जलूस निकाला था, वे भी मेरी जान लेना चाहते थे। आखिरकार मैं उनके लिए एक मुसलमान ही था, जिसकी जान लेनेसे वे अपनी जातिके लोगोंकी वाहवाही हासिल कर सकते थे। इसलिए मुझे अपनी जान बचानेके लिए दिल्ली भागना पड़ा। मेरा ख्याल था कि जो लोग पाकिस्तानके बजाय अखंड हिंदुस्तानमें यकीन करते हैं, उनके साथ यहां ऐसा बरताव नहीं किया जायगा। मगर यहांकी हालत और भी बुरी है। जिन दोस्तोंके साथ मैं यहां ठहरा हूं, वे भी मुझे शककी निगाहसे देखते हैं।

"बराबरी और आजादीके मेरे प्यारे फरिश्ते, अब मुझे बताओ कि मैं अपने जमीर (विवेक) के खिलाफ अपने मां-बापके पास, जिंदगीभर उनकी हँसीका साधन बननेके लिए पच्छिमी पाकिस्तान चला जाऊं, या हिंदुस्तानमें बंधकके बतौर रहूं, जहांके लोग, जानवर बने हुए मेरे धर्म-भाइयोंके पापोंका बदला मुझे मारकर लेना चाहते हैं।"

ऊपरके खतको मैंने थोड़ा संक्षेप कर दिया है। उसमें कड़ुआहटको छुआ नहीं गया है। यह मानते हुए कि उस

खतकी बातें सही हैं, उसमे कडुआहटके लिए काफी गुंजाइश है। बेहद विरोधी परिस्थितियोंमे ही किसी आदमीकी जांच होती है। भले दिनोंके दोस्त बहुतसे होते हैं। मगर वे किसी कामके नही होते। 'जो जरूरतपर काम आए, वही सच्चा दोस्त है।' क्या एक ही मजहबको माननेवाले लोग आपसमें ठीक उसी तरह नही लड़े है, जिस तरह आज हिंदू और मुसलमान लड रहे है? जब आम जनताको इतने बरसोसे लगातार नफरतका पाठ पढाया जाता रहा हो तब उससे इसके सिवा और क्या उम्मीद की जा सकती है कि वह आपसमे कट मरे। अगर खत लिखनेवाले भाई अपनी राष्ट्रीयताको ठीक समझते है तो उन्हे इस आडे समयका सामना करना चाहिए। हमे उन लोगोकी नकल कभी नही करनी चाहिए जो कसौटीके वक्त अपनी श्रद्धा छोड़ देते है। इसलिए इन खत लिखनेवाले भाईको यह सलाह देते हुए मुझे जरा भी हिचकिचाहट नही होती कि वे अपने पुराने दोस्तोंके द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिए जानेका खतरा उठाकर भी अपने घर जालंधर लौट जाय। ऐसे शहीदोंसे ही हिंदू-मुस्लिम-एकता कायम होगी। अगर वे भाई अपने शब्दोंको सच साबित करते है तो मैं पहलेसे कह रखता हूं कि उनके मा-बाप खुले दिलसे उनका स्वागत करेगे। हम इन्सानोकी किस्मतमें यही बदा है कि अपराधीके पापोका फल निरपराधीको भोगना पड़े। यही ठीक भी है। निरपराधियोके मुसीबतें सहनेकी वजहसे ही दुनिया ऊपर उठती और बेहतर बनती है। इस खुले सत्यको बार-बार

दोहरानेके लिए मेरा आजादी और समताका फरिश्ता होना जरूरी नही है।
नई दिल्ली, १३-१०-'४७

: ३५ :

अकर्ममें कर्म

एक भाई लिखते है :

"आपने 'मेरा धर्म' लेखमें लिखा है, 'अकर्ममें कर्म' देखनेकी हालतको मै पहुंचा नहीं हूं। इस वचनके मानी कुछ विस्तारसे बताएगे तो अच्छा होगा।"

एक स्थिति ऐसी होती है, जब आदमीको विचार जाहिर करनेकी जरूरत नही रहती। उसके विचार ही कर्म बन जाते है। वह संकल्पसे कर्म कर लेता है। ऐसी स्थिति जब आती है तब आदमी अकर्ममे कर्म देखता है, यानी अकर्मसे कर्म होता है, ऐसे कहा जा सकता है। मेरे कहनेका यही मतलब था। मै ऐसी स्थितिसे दूर हूं। उसतक पहुंचना चाहता हू। उस ओर मेरा प्रयत्न रहता है।
नई दिल्ली, १६-१०-'४७

: ३६ :

एक पहेली

एक भाई लिखते हैं—

"मजाकमें भी दो उपनिवेशोंके बीच लड़ाई होनेकी चर्चा न उठे तो अच्छा। मगर जब आपने इसका जिक्र करते हुए यहांतक कहा है कि इन दो राज्योंके बीच अगर लड़ाई हो तो यहांके मुसलमानोंको पाकिस्तानके खिलाफ लड़नेके लिए तैयार रहना चाहिए, तब सवाल यह उठता है कि उस हालतमें पाकिस्तानके हिंदुओं और सिक्खोंका भी अपने राज्यकी तरफ यही फर्ज होगा या नहीं? अगर सांप्रदायिक सवालोंपर ही लड़ाई हो तो फर्जको समझानेकी चाहे जितनी कोशिश की जाय, वफादारीका टिकना नामुमकिन मालूम होता है। मगर सांप्रदायिक सवालोंको छोड़कर और किसी कारणसे लड़ाई हो तो यह तो नहीं ही कहा जा सकता कि यहांके मुसलमानों और पाकिस्तानके गैर-मुसलमानोंको पाकिस्तानका ही विरोध करना चाहिए।"

हमारे दो राज्योंके बीच लडाईकी संभावनाकी चर्चा मजाकमें तो उठाई ही नही जा सकती। 'भी' क्रिया-विशेषण यहां बेमौजू है; क्योंकि ऐसी संभावना सचमुच मालूम पड़े, तभी इसपर चर्चा करना फर्ज हो जाता है। और तब भी चर्चा न करना बेवकूफी कहा जायगा।

जो नियम हिंदुस्तानके मुसलमानोंके लिए है, वही पाकिस्तानके गैर-मुस्लिमोंपर भी लागू होगा। मैं तो अपने भाषणोंमें और यहां होनेवाली चर्चाओमे अपनी यह राय जाहिर कर चुका हूं।

वेशक, यह राय काफी सोच-विचारके वाद कायम हुई है। वफादारी गैर-कुदरती तरीकेसे खडी नही की जा सकती। अगर परिस्थितियोंसे वह पैदा नही होती तो वह कभी भी पैदा नही होगी, ऐसा कहा जा सकता है। ऐसे वहुतसे लोग है, जो मानते है कि ऐसी वफादारी मुमकिन ही नही है और इसलिए वे मेरी रायको हँसीमें उड़ा देते है। मेरी समझमें इसमें हँसने लायक कुछ भी नही है। हिंदुस्तानके मुसलमान पाकिस्तानके मुसलमानोके खिलाफ तभी लड सकेंगे, जव वे ऐसा करना अपना फर्ज समझेंगे। यानी जव उनको यह साफ महसूस होगा कि उनके साथ तो हिंदुस्तानमे इन्साफका वरताव होता है और पाकिस्तानमें हिंदू वगैरह अल्पसंख्यकोंके साथ वेइन्साफी हो रही है। ऐसी हालत मेरी कल्पनासे वाहर नही है।

इसी तरह अगर पाकिस्तानके हिंदू वगैरह गैर-मुस्लिमोंको साफ तौरपर मालूम पड़े कि उनके साथ इन्साफ हो रहा है, वे सुखसे और वेफिकरीसे वहां रहते है और हिंदुस्तानके मुसलमानोंके साथ वेइन्साफी होती है, तो पाकिस्तानकी हिंदू वगैरह अल्पसंख्यक जातियां कुदरतन हिंदुस्तानके हिंदुओंसे लडेगी और ऐसा करनेके लिए किसीको उन्हे समझानेकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

हमारे देशकी वदकिस्मतीसे हिंदुस्तान और पाकिस्तान नामसे उसके जो दो टुकड़े हुए उसमें मजहवको ही कारण वनाया गया है। उसके पीछे आर्थिक और दूसरे कारण भले रहे हों, मगर उनकी वजहसे यह वंटवारा नही हुआ होता।

आज हवामे जो जहर फैला हुआ है, वह भी उन्ही साम्प्रदायिक कारणोंसे ही पैदा हुआ है। धर्मके नामपर लूट-मार होती है, अधर्म होता है। ऐसा न हुआ होता तो अच्छा होता, ऐसा कहना अच्छा तो लगता है, मगर इससे वास्तविकताको वदला नही जा सकता।

यह सवाल कई वार पूछा गया है कि दोनोंके बीच लडाई होनेपर क्या पाकिस्तानके हिंदू, हिंदुस्तानके हिंदुओंके साथ और हिंदुस्तानके मुसलमान पाकिस्तानके मुसलमानोके साथ लड़ेंगे? मै मानता हूं कि ऊपर बतलाई हुई हालतमे वे जरूर लड़ेंगे। मुसलमानोंकी वफादारीके वचनोंपर भरोसा करनेमे जितना जोखिम है, उसके बजाय भरोसा न करनेमे ज्यादा है। भरोसा करनेमे भूल हो और खतरेका सामना करना पडे तो बहादुरीके लिए यह एक मामूली वात होगी।

उपर्युक्त ढंगपर इस सवालको दूसरी तरहसे यों रखा जा सकता है कि क्या सत्य और न्यायके खातिर हिंदू हिंदूके खिलाफ और मुसलमान मुसलमानके खिलाफ लड़ेगा? इसका जवाब एक उलटा सवाल पूछकर दिया जा सकता है कि क्या इतिहासमे ऐसे उदाहरण नही मिलते?

सांप्रदायिक सवालोके सिवा दूसरे सवालोंको लेकर भी दो राज्योंके बीच लड़ाई हो सकती है, मगर यहां इसपर विचार करना फिजूल है। हिंदुस्तानके मुसलमान और पाकिस्तानके गैर-मुस्लिम पाकिस्तानके खिलाफ लडे, यह वात मेरी कल्पनाके वाहर है।

इस सवालको हल करनेमे सबसे वडी उलझन यह है कि

सत्यकी दोनों ही राज्योमे उपेक्षा की गई है, मानो सत्यकी कोई कीमत ही न हो। ऐसी विषम स्थितिमे भी हम उम्मीद करें कि सत्यपर अटल श्रद्धा रखनेवाले कुछ लोग हमारे देशमे जरूर हैं।

नई दिल्ली, १७-१०-'४७

: ३७ :

प्रौढ़-शिक्षणका नमूना

चर्खा-जयंतीके बारेमे सैकड़ों तार और पत्र मेरे पास आए थे। उनमेसे नीचेके पत्रने, जो इंदौरकी प्रौढ-शिक्षण-संस्थाकी तरफसे मिला है, मेरा ध्यान खींचा है—

"आजके शुभ अवसरपर हजारों बड़ी-बड़ी कीमती भेंटें, बधाईके तार और खत आपकी सेवामें पहुंचे होंगे। हिंदुस्तानके कोने-कोनेमें आपकी जन्मतिथि खुशीसे मनाई जा रही है। हर जगहका खुशी मनानेका ढंग जरूर कुछ-न-कुछ निराला होगा। हर एक यह कोशिश कर रहा होगा कि दूसरोंसे बढ़ जाय, जशन मनानेमें जीत उसीकी हो। इन सब बातोंको देखते हुए हमारी यह हिम्मत नहीं पड़ती कि किसी तरहकी भेंट यहांके प्रौढ़ साक्षरता-प्रचारके कार्यकर्ताओंकी तरफसे आपकी सेवामें पेश की जाय। लेकिन फिर भी इस शुभ अवसरको जिस तरहसे यहां मनाया गया है उसे लिखे बिना नहीं रहा जा सकता। आशा है कि हमारे इस कार्यको ही भेंट समझकर आप स्वीकार करेंगे।

"ता० २-१०-'४७ से ता० ८-१०-'४७ तक जयंती मनानेकी योजना इस तरह रक्खी गई है कि इन सात दिनोमें ८० गावोंके लोग मिलकर

आधाशीशीके झाड़ोको जड़से उखाड़कर नष्ट कर दें। इन झाड़ोंने सारे जंगलको घेरकर पशुओंके चारेका नाश कर दिया है। उनको उखाड़कर पशुओंके जीवनको बचानेके लिए, बिना किसी भेदभावके, इस अवसरसे फायदा उठाते हुए एक बुरी चीजको यहांसे दूर कर दें। इस योजनाके मुताबिक २ तारीखको छोटे-छोटे बच्चोंसे लेकर ६०-७० सालके बूढ़ोंने, एक मामूली गरीबसे लेकर सबसे ऊंचे धनवानने और एक छोटे नौकरसे लेकर बड़े-से-बड़े सर्कलके अफसरने इस कामको अपनाया और दोपहरसे पहले आधाशीशीके बड़े-बड़े खेतोंके पौधोको उखाड़कर साफ कर दिया। इससे चारेका बचाव, आधाशीशीके आगे बढ़नेकी रोक और उसका खात्मा हफ्तेके खतम होनेके पहले हो जायगा। बजाय जलूस निकालनेके यहांकी जनताके दिलमें प्रौढ़-शिक्षाद्वारा यह बैठाया जा रहा है कि ऐसे अवसरपर कोई ऐसा काम करना चाहिए, जो किसी भी जीवनके लिए लाभदायक हो। किसी भी किस्मकी बुराईके बीजको जड़मूलसे खोदनेका प्रयत्न प्रौढ़-शिक्षाकी तरफसे किया जा रहा है।

"ऊपरकी जो भेंट सेवामें पेश की जा रही है, उसपर लोग चाहे हँस लें; लेकिन हम पूरे दिलसे यह विश्वास करते है कि आप हमें निराश न करेंगे और इसे जरूर स्वीकार करेंगे।"

मैं चरखा-जयंती मनानेका यह एक अच्छा नमूना समझता हूं। सूत निकालनेके अर्थमे चरखा भले ही न चला; लेकिन चरखेमे जो चीजें आ जाती हैं, उनमेंसे आधाशीशीके पेड़ोंको जड़से उखाड़ डालना अवश्य आता है। उसमें परमार्थ है। ऐसे कामोंमें सहयोग होता है और ऐसे काम सब छोटे-बड़े निरंतर करते रहें तो उससे सच्चा शिक्षण मिलता है और सुंदर परिणाम निकलता है।

नई दिल्ली, १८–१०–'४७

: ३८ :

रंग-भेदका निवारण

[रेडियो-विभागके गुजराती भाइयोके साथ सवाल-जवाब]

सवाल—संयुक्त राष्ट्र संघ (यू० एन० ओ०) दक्षिण अफ़्रीकामें रहनेवाले हिंदुस्तानियोके साथ न्याय करनेमें असफल रहे तो दक्षिण अफ़्रीकाके हिंदुस्तानियोंको क्या करना चाहिए ?

जवाब—सत्याग्रह। इसमे नाकामयाव होनेकी कोई वात ही नही है। यह मेरी कल्पनाके वाहरकी वात है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि सत्याग्रह कभी असफल होता ही नहीं।

सवाल—संयुक्त राष्ट्र संघ अगर दक्षिण अफ़्रीकामें रहनेवाले हिंदुस्तानियोंके सवालोंको इन्साफसे हल करनेमें नाकामयाब साबित हो तो संस्थाके भविष्यपर इसका क्या असर हो सकता है ?

जवाब—अगर ऐसा होगा तो सयुक्त राष्ट्र सघकी साख चली जायगी।

सवाल—दुनियापर इसका क्या असर होगा ?

जवाब—यह कौन जानता है ? दुनियापर इसका क्या असर होगा, यह मै तो नही जानता।

सवाल—दुनियामें शांति कायम करनेके लिए जातिभेद और रंगभेद मिटाना जरूरी है। जो लोग इस वातको मानते हुए भी रंगभेदकी बुराईको दूर करनेके लिए कोई कोशिश नहीं करते, उनके लिए आपका क्या कहना है ?

जवाब—हां, रंगभेद दूर करनेकी जरूरत तो है ही।

लेकिन जो लोग इसे जरूरी मानते हुए भी कोशिश नही करते, वे कमजोर और निकम्मे हैं। उन्हे कुछ करना नही है।

सवाल—मानव-समाजमेंसे रंगभेद दूर करनेके लिए आपकी क्या सलाह है ?

जवाब—इसका बहुत कुछ हल हिंदुस्तानियोके हाथमे है। हिंदुस्तान सीधे रास्ते आ जाय तो सब कुछ अच्छा हो जाय।

सवाल—आज जो हिंदुस्तानी हिंदुस्तानके बाहर दुनियाके अलग-अलग देशोमें रहते है, उनके लिए आप क्या संदेश देते है ?

जवाब—जहां-जहां हिंदुस्तानी रहे, वहां-वहां उन्हे अपना नूर दिखाना चाहिए। अपनी शक्तियां और गुण बताने चाहिए। एक भी हिंदुस्तानीको ऐसा काम नही करना चाहिए जिससे हिंदुस्तानको नुकसान पहुंचे।

नई दिल्ली, २०–१०–'४७

: ३९ :

गुरुदेवके अमृतभरे वचन

गुरुदेवने अपने दस्तखत देते हुए जो भाव प्रकट किए थे, उनके संग्रहमेसे नीचेके वचन एक बंगाली भाईने भेजे है। उन्हे मूल भाषामे, हिंदुस्तानी अर्थके साथ नीचे देता हूं :

से लड़ाई ईश्वरेर विरुद्धे लड़ाई
जे युद्धे भाईके मारे भाई।

वह लडाई ईश्वरके ही खिलाफ है जिसमें भाई, भाईको मारता है।

जे करे धर्मेर नामे विद्वेष संचित
ईश्वरके अर्घ्य हते से करे वंचित।

जो धर्मके नामपर दुश्मनी पालता है, वह भगवानको अर्घ्यंसे वञ्चित करता है।

जे आंधारे भाईके देखिते नाहि पाय
से आंधारे अंध जाहि देखे आपनाय।

जिस अंधेरेमे भाई भाईको नही देख सकता, उस अंधेरे-का अंधा अपनेको ही नही देख सकता।

ईश्वरेर हास्यमुख देखिवारे पाइ
जे आलोके भाइके देखिते पाय भाइ।
ईश्वर प्रणामे तवे हात जोड़ हय
जखन भाइयेर प्रेमे मिलाइ हृदय॥

जिस उजेलेमें भाई-भाईको देख सकता है, उसीमें ईश्वरका हँसता मुंह दिखाई पड़ सकता है। जव भाईके प्रेममें दिल पसीज जाता है, तभी ईश्वरको प्रणाम करनेके लिए जाते हुए हाथ जुड़ जाते हैं।

नई दिल्ली, २३–१०–'४७

: ४० :

अहिंसा कहां, खादी कहां ?

काठियावाड़से एक भाई लिखते है—

"दूसरे सूबोकी तरह यहां काठियावाड़में भी खादी और अहिंसापरसे अपनी श्रद्धा हटा लेनेवालोंकी तादाद बढ़ती जा रही है। राजनीतिमें अहिंसा कैसे चल सकती है, ऐसी दलीलें पेश करनेवाले आज कांग्रेसी गांधी-भक्त भी है।"

इस खतमें इस तरहकी बहुत-सी बाते लिखी है, मगर मैंने तो सिर्फ मुद्देकी बात उसमेसे निकाल ली है।

इस छोटेसे वाक्यमे तीन विचारदोष है। मैं पहले कई बार समझा चुका हूं कि काठियावाड़ या दूसरे प्रदेशोंने अहिंसामें या खादीमें श्रद्धा रखी ही नही थी। मैंने यह मानकर अपने आपको धोखा दिया था कि लोग अहिंसाका पालन करते है और खादीको उसकी निशानीकी तरह अपनाते हैं। अहिंसाके नामपर लोगोंने कमजोरोंकी शांति रखी, मगर उनके दिलोंसे तो हिंसा कभी गई ही नही थी। अब तो इस बातको हम अच्छी तरहसे देख सकते हैं। काठियावाड़मे राम नहीं है, यह बात तो जब मैं राजकोट-प्रकरणके सिलसिलेमे वहां गया था, तभी साफ मालूम हो गई थी। इसलिए यह कहनेमे कोई सार नही है कि आज काठियावाड़की श्रद्धा कम होती जा रही है।

राजनीतिमे अहिंसा नही चल सकती, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। जब आप परदेशी हुकूमतके खिलाफ लड़े तब वह राजनीति नही थी तो और क्या था ? आज तो राज-

नीति वहुत थोड़ी है। आज धर्मके नामपर लूट-पाट होती है। लोगोने परदेशी हुकूमतके खिलाफ लडनेमें जो शांति रखी, वह आज मानो खतम हो गई है।

तीसरा दोष यह है कि इसमे कांग्रेसी और गाधी-भक्तोंके वीच भेद किया गया है। इस भेदको मैं विलकुल वेवुनियाद मानता हूं। अगर कोई गाधी-भक्त हो तो वह मैं ही हू। मगर मुझे उम्मीद है कि ऐसा घमड मुझमें नही है। भक्त तो भगवानके होते हैं। मैं तो अपनेको भगवान नही मानता। फिर मेरे भक्त कैसे ? और यह कैसे कहा जा सकता है कि अपने आपको गांधी-भक्त कहनेवाले लोग काग्रेसी नही है। कांग्रेसके ऐसे अनगिनत सेवक हैं जो उसके चार आना सदस्य भी नही हैं। उनमेसे मैं भी एक हू; इसलिए यह भेद कृत्रिम है।

आज देशमे कई चीजे चल रही है, उनमें मेरा जरा भी हिस्सा नहीं है, यह वात मुझे जोरोंसे कहनी चाहिए। मैं कह तो चुका हूं कि यह छिपी हुई वात नही है कि कांग्रेसने हुकूमत संभाली, तवसे वह अहिंसाको तिलांजलि दे चुकी है। मेरी रायमे, कांग्रेस-सरकारने खुराक और कपड़ेपर जिस तरह अंकुश रखा है, वह घातक है। मेरी चले तो मैं अनाजका एक दाना भी वाहरसे न खरीदूं। मेरा विश्वास है कि हिदुस्तानमें आज भी काफी अनाज है। सिर्फ कंट्रोलकी वजहसे देहातके लोग उसे छिपाकर रखनेकी जरूरत महसूस करनेको लाचार हुए हैं। अगर लोग मेरी वात मानते होते तो हिंदू, सिक्ख और मुसलमानोके वीच कभी लड़ाई नही होती। साफ वात यह है कि मेरी वातकी आज कोई कीमत नही रही। मेरी

आवाजकी कीमत अब अरण्य-रोदनके समान हो गई है।

खादीको अहिंसासे अलग करे तो उसके लिए थोड़ी जगह जरूर है, मगर अहिंसाकी निशानीके रूपमे जो उसका गौरव होना चाहिए, वह आज नही है। राजनीतिमे हिस्सा लेनेवाले जो लोग आज खादी पहनते है, वे रिवाजकी वजहसे ऐसा करते है। आज जय खादीकी नही, वल्कि मिलके कपडेकी है। हम मान बैठे है कि अगर मिले न हो तो करोड़ो इन्सानोंको नगा रहना पड़े। इससे बड़ा भ्रम और क्या हो सकता है? हमारे देशमें काफी कपास है, करघे है, चरखे है, कातने-बुननेकी कला है, फिर भी यह डर हमारे दिलोंमे घर कर गया है कि करोड़ो लोग अपनी जरूरत पूरी करनेके लिए कातने-वुननेका काम अपने हाथमे नही लेगे। जिसके दिलमें डर समा गया है, वह उस जगह भी डरता है, जहा डरका कोई कारण नही होता। और डरसे जितने लोग मरते है, उतने मौतसे या रोगसे नही मरते।

नई दिल्ली, २४–१०–'४७

: ४१ :

नए विश्वविद्यालय

आजकल देशमे नए विश्व-विद्यालय कायम करनेकी आंधी-सी उठ खड़ी हुई है। गुजरातको गुजराती भाषाके लिए, महाराष्ट्रको मराठीके लिए, कर्नाटकको कन्नड़के लिए, उडीसाको उड़ियाके लिए और आसामको आसामी भाषाके लिए विश्व-

विद्यालय चाहिए। मुझे लगता है कि अगर सूबोंकी इन सपन्न भाषाओं और उन्हे बोलनेवाले लोगोंको पूरी-पूरी तरक्की करना हो तो ऐसे विश्व-विद्यालय होने ही चाहिए।

लेकिन ऐसा मालूम होता है कि इन विचारोंपर अमल करनेमें जरूरतसे ज्यादा उतावलापन दिखाया जा रहा है। इसके लिए सबसे पहले भाषावार सूबोंकी रचना की जानी चाहिए। उनका राज-तत्र अलग होना चाहिए। बंबई सूबेमे गुजराती, मराठी और कन्नड़ तीन भाषाए बोली जाती है। मद्रासके सूबेमे तामिल, तेलगू, मलयाली और कन्नड़ चार भाषाएं बोली जाती हैं। आंध्र देशका अपना अलग विश्व-विद्यालय है। उसे कायम हुए थोडा समय हो गया, लेकिन उसने काफी तरक्की की है ऐसा नही कहा जा सकता। अनामली विश्व-विद्यालय तामिल भाषाके लिए माना जा सकता है, लेकिन मैं नहीं समझता कि उससे तामिल भाषाका पोषण होता है या उसका गौरव बढ़ा है।

नए विश्व-विद्यालयोंके लिए ठीक-ठीक वातावरण होना चाहिए। उन्हें जमानेके लिए ऐसे स्कूल और कालेज होने चाहिए, जो अपने-अपने प्रांतकी भाषाओंके जरिए तालीम दे। तभी विश्व-विद्यालयका पूरा वातावरण उत्पन्न हुआ माना जा सकता है। विश्व-विद्यालय चोटीकी शिक्षण-संस्था है; लेकिन अगर नींव मजबूत न हो तो उसपर इमारतकी मजबूत चोटी खडी करनेकी आशा नही रखी जा सकती।

हालांकि हम राजनैतिक दृष्टिसे आजाद है, फिर भी पश्चिमके प्रभावसे अभी आजाद नही हुए है। जो यह मानते है

कि पश्चिममें ही सब कुछ है और हर तरहका ज्ञान वहींसे मिल सकता है, उनसे मुझे कुछ नहीं कहना है। न मेरा यही विश्वास है कि पश्चिमसे हमें कोई अच्छी चीज मिल ही नहीं सकती। वहां क्या अच्छा है और क्या बुरा है, यह समझने लायक प्रगति अभी हमने नहीं की है। अभी यह नहीं कहा जा सकता कि विदेशी हुकूमतसे आजाद हो गए हैं इसलिए हम विदेशी भाषा या विदेशी विचारोंके असरसे भी आजाद हो गए हैं। क्या यह समझदारीकी बात नहीं होगी, क्या देशके प्रति हमारे फर्जका यह तकाजा नहीं है कि नए विश्व-विद्यालय कायम करनेके पहले हम थोड़ी देर ठहरें और अपनी नई मिली हुई आजादीके जीवन देनेवाले वातावरणमें कुछ सोचें? विश्व-विद्यालय सिर्फ पैसोंसे या बड़ी-बड़ी इमारतोंसे नहीं बनते। विश्व-विद्यालयोंके पीछे जनताकी जाग्रत रायका होना सबसे जरूरी है। उनके लिए पढ़ानेवाले काबिल शिक्षकोंकी जरूरत है। उनके कायम करनेवाले लोगोंमें काफी दूरंदेशी होनी चाहिए।

मेरे विचारसे विश्व-विद्यालय कायम करनेके लिए पैसेका इंतजाम करनेका काम लोकशाही हुकूमतका नहीं है। अगर लोग उन्हें कायम करना चाहेंगे तो वे उनके लिए पैसे भी देंगे। लोगोंके पैसेसे कायम किए जानेवाले विश्व-विद्यालय देशकी शोभा बढाएंगे। जिस देशका राजकाज विदेशियोंके हाथमें होता है, वहां सब कुछ ऊपरसे टपकता है और इसलिए लोग दिनोंदिन पराधीन या गुलाम बनते जाते हैं। जहां जनताकी हुकूमत होती है, वहां हर चीज नीचेसे ऊपर उठती है और

इसलिए वह टिकती है, शोभा पाती है और लोगोंकी ताकत बढ़ाती है। जिस तरह अच्छी जमीनमें बोया हुआ बीज दस गुनी उपज देता है उसी तरह विद्याकी उन्नतिके लिए खर्च किया हुआ पैसा कई गुना लाभ पहुंचाता है। विदेशी हुकूमतके मातहत कायम किए गए विश्व-विद्यालयोंने इससे उलटा काम किया है। उनका दूसरा कोई नतीजा हो भी नहीं सकता था। इसलिए हिंदुस्तान जबतक नई मिली हुई आजादीको अच्छी तरह पचा नही लेता तबतक नए विश्वविद्यालय कायम करनेमें मुझे बड़ा डर मालूम होता है।

इसके अलावा, हिंदू-मुसलमानोंके झगड़ेने ऐसा भयकर रूप ले लिया है कि आज पहलेसे यह कहना मुश्किल हो गया है कि हम कहां जाकर रुकेंगे। मान लीजिए कि अनहोनी बात हो जाय और हिंदुस्तानमे सिर्फ हिंदू और सिक्ख ही रहे और पाकिस्तानमें सिर्फ मुसलमान, तो हमारी शिक्षा जहरीला रूप ले लेगी। अगर हिंदू, मुसलमान और दूसरे धर्मके लोग हिंदुस्तानमें भाई-भाई बनकर रहेंगे तो स्वभावतः हमारी शिक्षाका सौम्य और सुंदर रूप होगा। या तो हमारे देशमें अलग-अलग धर्मोंके लोगोंके दोस्ती और भाईचारेसे रहते आनेके कारण जो मिली-जुली सुंदर सभ्यता पैदा हुई है, उसे हम मजबूत बनाएंगे और ज्यादा अच्छा रूप देंगे, या फिर हम ऐसे समयकी खोज करेंगे जब हिंदुस्तानमें सिर्फ हिंदू-धर्मके लोग ही रहते थे। इतिहासमे ऐसा कोई समय शायद न मिल सके। लेकिन ऐसा कोई समय मिला और हम

उसके पीछे चले तो हम कई सदी पीछे हट जायगे और दुनिया हमसे नफरत करेगी और हमें कोसेगी। मिसालके लिए, अगर हम इतिहासके मुगलकालको भूलनेकी बेकार कोशिश करेंगे तो हमे दिल्लीकी, दुनियामे सबसे अच्छी जामा मसजिदको भूल जाना होगा, या अलीगढ़की मुस्लिम यूनिवर्सिटीको भूलना होगा, या दुनियाके सात अचरजोमेसे एक आगराके ताजको, या मुगल-कालमे बने हुए दिल्ली और आगराके बड़े-बड़े किलोंको भूलना पडेगा । तव हमे उसी दृष्टिसे अपना इतिहास फिरसे लिखना होगा। आजका वातावरण सचमुच ऐसा नही है जिसमे हम इस वारेमें किसी सही नतीजेपर पहुंच सके। अपनी दो महीनेकी आजादीको अभी हम गढ़तेमें लगे है। हम नही जानते कि आखिरमें वह क्या रूप लेगी। जबतक हम ठीक-ठीक यह नही जान लेते तबतक अगर हम मौजूदा विश्व-विद्यालयोंमे ही भरसक फेर-फार करें और आजकी शिक्षण-सस्थाओमे आजादीके प्राण फूंकें तो इतना काफी होगा । इस तरह हमे जो अनुभव होगा, वह नए विश्व-विद्यालय कायम करनेमें हमारी मदद करेगा ।

अब रही बात बुनियादी तालीमकी। इस तालीमको शुरू हुए अभी आठ बरस हुए है। इसलिए उसके अमलमें जो अनुभव हुआ है, वह हमे मैट्रिकके दर्जेसे आगे नही ले जाता। फिर भी जो लोग इसके प्रयोगमे लगे हैं, उनके मनमे बुनियादी तालीमका विकास होता ही रहता है। जिस संस्थाके पीछे आठ सालका ठोस अनुभव है, उसकी सिफारिशोंको

कोई भी शिक्षाशास्त्री ठुकरा नही सकता। हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि यह बुनियादी तालीम देशके वातावरणमेंसे पैदा हुई है और वह देशकी जरूरतोको पूरा कर सकती है। यह वातावरण हिंदुस्तानके सात लाख गावोमे और उनमे रहनेवाले करोडो लोगोमे छाया हुआ है। उनको भुलाकर आप हिदुस्तानको भी भूल जायंगे। सच्चा हिदुस्तान शहरोमे नही, बल्कि इन सात लाख गावोमे बसा है। शहर विदेशी हुकूमतकी जरूरते पूरी करनेके लिए खडे हुए थे। आज भी वे पहलेकी तरह निभ रहे है, क्योकि विदेशी हुकूमत हिदुस्तानसे चली गई, लेकिन उसका असर अभी बना हुआ है—इतनी जल्दी वह जा भी नही सकता।

यह लेख मै नई दिल्लीमे लिख रहा हूं। यहां बैठे-बैठे मै गांवोंका क्या खयाल कर सकता हू? जो बात मुझपर लागू होती है, वही हमारे प्रधान-मंडलपर भी लागू होती है। फर्क यही है कि उसपर यह विशेष तौरसे लागू होती है।

यहां हम बुनियादी तालीमके खास-खास उसूलोंपर विचार करे—

(१) पूरी शिक्षा स्वावलबी होनी चाहिए। यानी आखीरमे पूंजीको छोड़कर अपना सारा खर्च उसे खुद निकालना चाहिए।

(२) इसमे आखिरी दरजेतक हाथका पूरा-पूरा उपयोग किया जायगा। यानी विद्यार्थी अपने हाथोसे कोई-न-कोई उद्योग-धंधा आखिरी दरजेतक करेंगे।

(३) सारी तालीम विद्यार्थियोंकी सूबेकी भाषा द्वारा दी जानी चाहिए ।

(४) इसमे सांप्रदायिक धार्मिक शिक्षाके लिए कोई जगह नही होगी, लेकिन बुनियादी नैतिक तालीमके लिए काफी गुंजायश होगी ।

(५) यह तालीम, फिर उसे बच्चे लें या बड़े, औरत ले या मर्द, विद्यार्थियोंके घरोंमें भी पहुंचेगी ।

(६) चूंकि इस तालीमको पानेवाले लाखों-करोड़ों विद्यार्थी अपने आपको सारे हिंदुस्तानके नागरिक समझेंगे, इसलिए उन्हे एक अंतर्प्रांतीय भाषा सीखनी होगी । सारे देशकी यह एक भाषा नागरी या उर्दूमे लिखी जानेवाली हिंदुस्तानी ही हो सकती है । इसलिए विद्यार्थियोंको दोनों लिपियां अच्छी तरह सीखनी होंगी ।

इस बुनियादी विचारके बिना या इसको ठुकराकर जो नए विश्वविद्यालय कायम किए जायंगे वे मेरे विचारसे देशको कोई फायदा नही पहुंचाएंगे, उलटे नुकसान ही करेंगे । इसलिए सब शिक्षा-शास्त्री इस नतीजेपर पहुंचेंगे कि नए विश्वविद्यालय खोलनेसे पहले थोड़ी देर ठहरना और सोच-विचार करना जरूरी है ।

नई दिल्ली, २५–१०–'४७

: ४२ :

दोनों लिपियां क्यों ?

रैहानाबहन तैयबजी लिखती है .

"१५ अगस्तके बाद दो लिपियोके बारेमें मेरे खयाल बिलकुल बदल गए और अब पक्के हो गए है। मेरे खयालसे अब वक्त आ गया है कि इस दो लिपियोके सवालपर खुल्लमखुल्ला और आम तौरसे साफ-साफ चर्चा हो। इसलिए अगर आप ठीक समझें तो इस खतको 'हरिजन'में छापकर उसपर चर्चा करें।

"जबतक हिंदुस्तान अखड था और उसे अखड रखनेकी उम्मीद थी तबतक नागरी लिपिके साथ उर्दू लिपिको चलाना मैं उचित—बल्कि जरूरी—मानती थी। आज हिंदुस्तान, पाकिस्तान दो जुदे राज्य बन गए है (मुसलमानोंकी निगाहमें तो दो जुदे राष्ट्र)। हिंदुस्तानी हिंदुस्तानकी राष्ट्रभाषा : नागरी हिंदुस्तानकी खास और मान्य लिपि—फिर नागरीके साथ उर्दूके गंठबंधनकी क्या जरूरत है ? इस सवालपर मैं बराबर विचार करती रही हूं और अब मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि हिंदुस्तानीपर उर्दू लिपि लादनेमें इतना ही नहीं कि कोई फायदा नहीं, बल्कि सख्त नुकसान है। मैं मानती हूं कि :

"१. हिंदू-मुस्लिम-ऐक्य और मैत्री, भाषा या लिपिसे नहीं हो सकती—सिर्फ सामाजिक मेल-जोलसे हो सकती है। यह चीज मैं जीवन-भर देखती आई हूं। मुसलमान खुद यही कहते आए है और अब भी कहते है। साथ मिलने-जुलने, रहने-सहने, खाने-पीने, खेलने-कूदने, कामकाज करनेसे ही ऐक्य बढ़ सकता है। उर्दू लिपि सामाजिक मेल-जोलकी जगह कभी नहीं ले सकती।

"२. मुसलमानोको अगर आप वफादार हिंदुस्तानी बनाना चाहते

हैं तो उनमें और बाकीके हिंदुस्तानियोंमें अब कोई फर्क नहीं करना चाहिए। अगर वे हिंदुस्तानमें रहना चाहते हैं तो और हिंदुस्तानियोंकी तरह रहें। हिंदुस्तानी सीखें, नागरी सीखें। अगर उर्दूका आग्रह हो तो बेशक उन्हें उर्दू सीखनेकी सहूलियतें दी जायं। मगर उन्हें खुश करनेके खातिर हिंदुस्तानकी सारी जनतापर उर्दू लिपि क्यों लादी जाय? इसमें मुझे सख्त अन्याय नजर आता है और मैं इसके बिलकुल खिलाफ हूं। गैर-मुसलमानोंपर यह अन्याय, कि उन्हें फिजूल एक इतनी मुश्किल, दोषपूर्ण और हिंदुस्तानीके लिए निकम्मी—(उर्दूलिपिमें साहित्यिक हिंदुस्तानी लिखना महा कठिन है; क्योंकि संस्कृत शब्दोंकी बड़ी तोड़-मरोड़ करनी पड़ती है।)—लिपि सीखनेमें अपनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है और मुसलमानोंपर यह अन्याय कि उन्हें अपना दुराग्रह छोड़नेका आप कोई मौका ही नहीं देते! उनकी बेजा मांग पूरी करके आप उनमें और अन्य अल्पसंख्यकोंमें एक कृत्रिम फर्क पैदा कर देते हैं। इससे गैर-मुसलमानोंको चिढ़नेका हक मिलता है और मुसलमानोंको अपनी अलग-अलग जमात बनाकर बैठ जानेका मौका मिलता है। (इस चीजका सबूत मेरा अपना खानदान देता है।) अगर आपने उर्दू लिपि भी चलाई तो मुसलमान सदा हिंदमें परदेशी बनकर रहेंगे और कामचलाऊ नागरीसे संतोष मानकर अपना सारा ही व्यवहार उर्दूमें चलाएंगे। यह मेरा अनुभवजन्य, इसलिए, दृढ़ विश्वास है। बापूजी! गुस्ताखी माफ—आप लोग मुसलमानोंसे इतने अलग रहे हैं कि आपको उनके मानसकी बिलकुल खबर नहीं। यही वजह है कि पाकिस्तान हो गया। और मुझे यकीन है कि अगर आपने नागरीके साथ उर्दूको भी राष्ट्रलिपि बना लिया तो आप हिंदुस्तानके भीतर एक दूसरा पाकिस्तान खड़ा कर देंगे।

"३. मैं मानती हूं कि जो शक्ति आप लोगोंको उर्दूलिपिके प्रचारमें, हर किताबकी द्विलिपि बनानेकी तजवीजोंमें, कातिब, ब्लॉक्स और छपाईकी तोहमतोंमें खर्च करनी पड़ती है सो अब खरे महत्त्वके कामोंमें लगानी

चाहिए। हमें हिंदुस्तानी भाषा बनानी है, कोष तैयार करने हैं, साहित्य खड़ा करना है, उर्दू लिपिके आग्रहसे हमारा बोझ चौगुना हो जाता है, काममें रुकावटें पैदा होती हैं और वक्त फिजूल बिगड़ता है। इसमें शक नहीं कि उर्दू-हिंदी दोनो जाने बिना हिंदुस्तानी बनाना अशक्य है। लिहाजा प्रचारकोंको, लेखकोंको, हमारे प्रचारक-मदरसोंमें नागरी-उर्दूका ज्ञान होना जरूरी है। लेकिन आम जनताको उर्दू लिपिसे क्या गरज ? उसकी जबान हिंदुस्तानी हो तो बिलकुल काफी है। पूज्य प्यारे बापूजी, मैंने आप लोगोंकी सारी दलीलें बड़े ध्यानसे सुनी हैं और एक भी गले नहीं उतरती। इसलिए आज यह चर्चा कर रही हूं। हम हिंदुस्तानियोंका यही सूत्र रहे—हमारी राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी, हमारी राष्ट्रलिपि नागरी। बस !

"४. अब एक मुस्लिम हिंदुस्तानीकी हैसियतसे मेरी विनती है। खुदाके लिए आप मुसलमान हिंदुस्तानियोंको अपने ही मुल्कमें परदेशियों-की तरह रहनेका प्रोत्साहन न दीजिए। वे तो यही चाहते हैं। आप ब्रिटेन और पाकिस्तानका खेल खेलते रहें और मुसलमान हर जगह बाजियां जीतते रहें ! बापू, मैं बहुत घबराई हुई हूं। मैं मुसलमान-समाजसे वाकिफ हूं। उनकी महत्वाकांक्षाएं मैं जानती हूं, भले आप जानने या माननेसे इन्कार करें। खुदाके लिए मेरी बातपर ध्यान दीजिए।

"आम तौरसे हिंदवासी मुसलमानोंकी 'हिंदुस्तानी' यानी 'उर्दू'। वे कोई और 'हिंदुस्तानी' न जानते हैं, न मानते हैं। आकाशवाणी (रेडियो)की भाषापर मुसलमानोंकी कड़ुई टीका यह है कि भई, इस जबानको तो हम नही समझ सकते, कितने संस्कृत अल्फाज हैं ? 'समाज', 'भाषा', 'निर्णय', 'निश्चय' जैसे प्रचलित शब्द भी हमारे वफादार मुसलमान हिंदुस्तानियोंके लिए हराम हैं। अगर सारी जनता उर्दू सीख गई तो क्या आप मानते हैं कि मुसलमान उर्दूके सिवा कुछ भी लिखेंगे-पढ़ेंगे ?

मैं नहीं मानती और मेरे अविश्वासके पीछे हिंदवासी मुसलमानोंका सारा इतिहास पड़ा हुआ है।

"बापू! हाथ जोड़कर अर्ज है—सज्जनताके साथ क्या सत्यदर्शन (Realism) नहीं रह सकता?"

यह खत सोचनेके काबिल है। रैहानाबहनके दिलमें हिंदू-मुस्लिमका भेद नहीं है। दोनों एक हैं ऐसा वह मानती है और वैसे ही बरतती है। मैं भी दोनोंमे भेद नहीं करता। हम दोनों मानते हैं कि हिंदू और मुसलमानोंमें आचार-भेद है, पर वह भेद दोनोंको अलग नही रखता। धर्म दो हैं, फिर भी दोनोंकी जड़ एक है।

तब भी रैहानाबहनकी बातमें मै भूल देखता हूं। हम दो लोग (नेशन) नही हैं। दो लोग माननेमें हम हिंदुस्तानको वड़ा नुकसान पहुंचाएंगे। क़ायदेआजम भले दो लोग मानें और ऐसे माननेवाले भले हिंदू भी हों, लेकिन सारी दुनिया गलतीमे फँसे तो क्या हम भी फँसे? ऐसा कभी नहीं हो सकता।

अगर राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी है तो उसे दोनों लिपियोमें लिखनेकी छूट होनी चाहिए। अगर हम हिंदूको या मुसलमानको एक ही लिपिमें लिखनेके लिए मजबूर करें तो हम उसके साथ गैरइन्साफी करेंगे और जब यह गैरइन्साफी अल्पमतपर उतरती है तब वहुमतका गुनाह दुगुना माना जाय।

मैं नहीं कहता कि हिंदुस्तानके ४० करोड़को दोनों लिपियां सीखना है। ऐसा अवश्य है कि जो सारे मुल्कमें फिरता है, जिसको अपने सूबे ही की नही; बल्कि सारे मुल्ककी सेवा करनी

है, उसे दो लिपियां सीखनी ही चाहिए, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान।

अगर हिंदीको राष्ट्रभाषा बनना है तो लिपि नागरी ही होगी; अगर उर्दूको बनना है तो लिपि उर्दू ही होगी। अगर हिंदी उर्दूके संगमके जरिए हिंदुस्तानीको राष्ट्रभाषा बनना है तो दोनो लिपियां जरूरी है। याद रखना चाहिए कि आज सचमुच उर्दू लिपि या उर्दू भाषा सिर्फ मुसलमानोकी नही है। ऐसे असंख्य हिंदू है, जिनकी मादरी जबान उर्दू है और वे उसे उर्दू लिपिमे ही लिखते है। यह भी याद रखना चाहिए कि दो लिपियोंकी बात आजकी नही है। मैं जब हिंदुस्तानमे आया तबसे यह बात चली है। यही विचार मैंने इंदौरके हिंदी-साहित्य-सम्मेलनके सामने रखे थे। उस वक्त अगर कोई विरोध हुआ था तो नहीके बराबर था। उसका मुझे स्मरण भी नही है। हां, नाम मैंने हिंदी ही कायम रखा था। व्याख्या वही की थी, जो आज करता हूं। मेरे खयालसे आज जब विचारोंकी उथल-पुथल हो रही है तब हमारी पतवार सिर्फ एक, और मजबूत होनी चाहिए।

जबतक उर्दू लिपिका संबंध मुसलमानोंसे माना जाता है तबतक हमारा फर्ज है कि हम हिंदुस्तानीके नामपर और दोनों लिपियोंपर कायम रहे। यह बात सबको साफ समझमें आने-जैसी है। किसी भी कारणसे हो, हमने कई जगह यूनियनमे मुसलमानोंपर ज्यादतियां की है। पाकिस्तानमें हिंदुओं और सिखोपर ज्यादतिया शुरू हुई, इसलिए यूनियनमें

हिंदुओं और सिखोंने मुसलमानोंपर की, ऐसा जवाब हमारी तरफसे ज्यादतियोंके समर्थनमें हो नही सकता। ऐसे मौकेपर कहना कि हिंदुस्तानमें राष्ट्रलिपि एक नागरी ही होगी, इसे मैं मुस्लिम भाइयोंपर नागरीको 'लादना' कहूंगा। हां, अगर मुसलमान उर्दू लिपिमें ही लिखें और उर्दू व हिंदुस्तानीमें कोई फर्क ही न समझे तो मैं उसे मुस्लिम भाइयोंका हठ कहूंगा। शायद ऐसा भी माना जायगा कि उनका दिल हिंदुस्तानमें नही है।

रैहानावहनका यह कहना कि उर्दू लिपिको नागरीके साथ रखनेमे मुसलमानोंको राजी रखनेकी या उनकी खुशामद करनेकी बात होगी, नासमझीकी बात है। राजी रखना कभी फर्ज होता है और किसी वक्त गुनाह भी होता है। भाईका अपने भाईको राजी रखनेके लिए उत्तरमे जानेके बदले कभी दक्खिनमें जाना फर्ज हो सकता है, लेकिन शराव पीना गुनाह होगा। इस तरह तो वह अपना और अपने भाईका बुरा करेगा। मुसलमान भाईको राजी रखनेके लिए मैं कलमा नही पढ़ सकता, न वह मुझे राजी रखनेके लिए गायत्री पढ़ सकता है, कलमा और गायत्री दोनों एक ही चीजे है, ऐसा मानकर ही दोनों एक-दूसरेको समझ सकते है। लेकिन यह दूसरी बात है, और ऐसा होना भी चाहिए। इसीलिए तो एकादश व्रतमें सर्वधर्म-समानताको जगह दी गई है।

तात्पर्य यह कि सबको राजी रखनेमें दोष ही है, ऐसा नही कह सकते, वल्कि वाज दफा वही फर्ज होता है।

वहन फिर लिखती है कि नागरी लिपि प्रमाणमें पूर्ण है,

उर्दू प्रमाणमे अपूर्ण । उर्दू पढ़नेमें मुश्किल है और संस्कृतके शब्द उर्दूमे लिखे ही नही जाते । इस कथनमें थोड़ा वजूद (वज़न) है जरूर । इसका अर्थ यह हुआ कि नागरी लिपि पूर्ण होते हुए भी सुधार मांगती है, वैसे ही उर्दू लिपि अपूर्ण होनेके कारण सुधार मांगती है । संस्कृत शब्द उर्दू लिपिमे लिखे ही नही जाते, ऐसा कहना ठीक नही है । मेरे पास सारी गीता उर्दू लिपिमें लिखी पड़ी है । लिपियोमे सुधार तब हो सकता है, जब वे गिरोहबंदी और जनूनका कारण नही रहतीं । सिंधी लिपि उर्दूका सुधार ही है न ?

अंतमें रैहानाबहनसे मैं कहना चाहूंगा कि उनका खत हिंदुस्तानीका एक नमूना है । उसमे अरबी शब्द है तो संस्कृत भी है । हिंदुस्तानीकी खूबी ही यह है कि उसे न संस्कृतसे वैर है, न अरबी-फारसीसे । हिंदुस्तानी तो ताकतवर तब बनेगी जब वह अपनी मिठासको कायम रखकर दुनियाकी सब भाषाओंका सहारा लेगी; लेकिन उसका व्याकरण तो हमेशा हिंदी रहेगा । 'हिंदू' का बहुवचन 'हिंदुओं' है, 'हनूद' नही । रैहानाबहन उर्दू अच्छी जानती है और हिंदी भी । दोनों लिपियोंमें लिख भी सकती है । जब मै यरवदा जेलमें था तब वह और जोहराबहन अंसारी मुझे उर्दूके पाठ खतोंकी मारफत सिखाती थी । मेरी सलाह है कि वह अपना वक्त हिंदुस्तानीको बढ़ानेमें और दोनों लिपियां आसानीसे सिखानेमे दे । यह काम वह तभी कर सकती है जब उनका अपना अज्ञान दूर हो । अगर वह जो मानने लगी है सो ठीक है तो मुझे कुछ कहनेको नही रह जाता । तब तो

मुझे एक नया पाठ सीखना होगा और उर्दू लिपिको जो जगह में देता हूं, उसे भूलना होगा।

नई दिल्ली, १–११–'४७

: ४३ :

हम ब्रिटिश हुकूमतकी नकल तो नहीं कर रहे हैं ?

"१५ अगस्त आई और चली गई। सारे हिंदुस्तानके लोगोंने बड़ी धूमधाम और अनोखे उत्साहसे आजादी-दिन मनाया। उनका यह सोचना ठीक ही था कि साम्राज्यवादी हुकूमतके नीचे उन्हें जितनी भी भयंकर मुसीबतें और यातनाएं सहनी पड़ीं, वे सब अब पुराने जमानेकी निशानियां बन जायंगी। जीवनमें पहली बार गांवके गरीब-से-गरीब किसानकी निराशाभरी आंखें खुशीसे चमक उठीं। इस मौकेपर शहरके मजदूरका उदास दिल भी खुशीसे उछलने लगा। इस विशाल देशके हर दबे और कुचले हुए मर्द और औरतने आजादी-दिन दिली जोश और उमंगके साथ मनाया, क्योंकि बरसोंके दुःख-दर्द और कुरबानियोंके बाद आखिर हिंदुस्तानके पराधीन मानवको आशाकी झलक दिखाई दी, उसे बेहतर दिनों और बोझोंके हलके होनेकी उम्मीद बंधी।

"लेकिन आजादी-दिनकी खुशियोंके बाद ही नई दिल्लीसे एक सरकारी सूचना निकली, जिसमें सूबोंके गवर्नरोंकी तय की हुई तनखाहों और भत्तोंकी घोषणा की गई। भोली-भाली जनताने यह आशा लगा रखी थी कि साम्राज्यवादी हुकूमतके साथ ही ऊंचे अफसरोंकी बड़ी-बड़ी तनखाहोंके भारसे दबा हुआ शासन-तंत्र भी खतम हो जायगा, जो गुलाम देशको

साम्राज्यवादके फंदेमें फँसाए रखनेके लिए ही पैदा किया गया था। आजसे पहले देशके हर राजनैतिक नेताने, हर मशहूर अर्थ-शास्त्रीने, वाइसराय, केंद्रके मंत्रियों और सूबोके गवर्नरो वगैरह सरकारी हाकिमोको दी जाने-वाली बड़ी-बड़ी तनखाहों और उनके भत्तोकी साफ शब्दोंमें कड़ी निंदा की थी। इस बारेमें कांग्रेसने कई प्रस्ताव पास किए थे। कराची-कांग्रेसके मशहूर प्रस्तावमें सरकारके ऊंचे-से-ऊंचे हाकिमकी तनख्वाह ५०० रुपये माहवार नियत की गई थी; लेकिन आज शायद वह सब भुला दिया गया है और गवर्नरोकी ऊंची तनख्वाह ५५०० रुपये माहवार तय की गई है।

"सबसे पहले हम यह देखें कि दूसरे देशोके ऐसे ऊंचे हाकिमोको क्या तनख्वाह दी जाती है। दुनियाके सबसे धनी देशकी सबसे धनी स्टेट—न्यूयार्क—अपने गवर्नरको १० हजार डालर सालाना देती है, जो हमारे हिसाबसे तीन हजार रुपये माहवारसे भी कम होता है। अमेरिकाके आइडाहो नामक स्टेटके गवर्नरकी तनख्वाह १५०० रुपये माहवारसे भी कम होती है। अमेरिकाकी एक दूसरी स्टेट मेरीलैंड अपने गवर्नरको १ हजार रुपये माहवारसे कुछ ही ज्यादा देती है। इलिनोइसका गवर्नर, जिसकी आबादी उड़ीसा या आसामके बराबर है, ३ हजार रुपयेसे कुछ ही ज्यादा पाता है। दक्षिण अफ्रीकाके यूनियनमें सूबोंके शासकोको, जो हमारे हिंदुस्तानी गवर्नरोंकी हैसियतके होते हैं, हर माह २,२००से २,७०० रुपयोके बीच वेतन दिया जाता है। आस्ट्रेलियामें क्वींसलैंडके गवर्नरको ३ हजार रुपये माहवारसे कुछ ही ऊपर तनख्वाह मिलती है। इसे सब जानते हैं कि स्टेलिनको ३५० रुपये माहवार वेतन दिया जाता था। ग्रेट ब्रिटेन केबिनेट मिनिस्टरोकी तनखाहोका मुकाबला हमारे गवर्नरोंकी तनखाहोसे नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे लोग अपने पूरे देशपर शासन करते हैं। और फिर भी ब्रिटिश मंत्रिमंडलके मंत्रीकी तन-खाह हिंदुस्तानी गवर्नरकी तनखाहसे ज्यादा नहीं होती। यह ध्यानमें रखने

लायक बात है कि ऊपरके देशोके उन हाकिमोको अपनी तनखाहोमेंसे इनकमटैक्स और दूसरे टैक्स भी देने होते है। इसलिए बिना किसी विरोधके यह कहा जा सकता है कि हिंदुस्तानी गवर्नरकी तनखाह दुनियामें सबसे ऊंची है।

"इन बातोपर हम दूसरे पहलूसे विचार करें। हिंदुस्तानका गवर्नर अपने सूबेका अव्वल नंबरका सेवक है। इसलिए हम इस सेवककी आमदनीका उसके मालिक (जनता)की आमदनीसे मुकाबला करें। इस लड़ाईके पहले हर हिंदुस्तानीकी औसत सालाना आमदनी ६५ रुपये कूती गई थी। अगर हम एक मामूली किसान या मजदूरकी औसत सालाना आमदनीका हिसाब लगावें तो वह इससे बहुत कम होगी। प्रो० कुमारप्पाके हिसाबसे यह सिर्फ १२ रुपये थी, और प्रिंसिपल अग्रवालने उसका आंकड़ा १८ रुपये सालाना तय किया है। इन सारे औसतोका हिसाब लगानेपर हम इस नतीजेपर पहुंचते है कि एक हिंदुस्तानी गवर्नरकी आमदनी अपने मालिकोकी आमदनीसे हजार गुना ज्यादा होती है। और अगर हम नीचे-से-नीचे वर्गके लोगोंकी, जिनकी हिंदुस्तानमें बहुत बड़ी तादाद है, सालाना आमदनीको लें तो सेवक और मालिकोकी आमदनीके बीचका यह भेद ४ हजार गुनातक पहुंच जाता है। अमेरिकामें भी, जिसे सबसे बड़ा पूंजीवादी देश कहा जाता है और जहां सबसे बड़ी आर्थिक विषमता पाई जाती है, एक गवर्नरकी आमदनी एक अमेरिकन नागरिककी औसत आमदनीसे सिर्फ २० गुना ज्यादा होती है।

"दूसरी तरहका मुकाबला इस समस्यापर और ज्यादा प्रकाश डाल सकेगा। सूबोके शासन-प्रबंधमें चपरासियोंका नंबर सरकारी आफिसोमें सबसे नीचा होता है। मध्यप्रांतमें एक चपरासीकी माहवार तनखाह ११ रुपये है। दूसरे सूबोमें वह कुछ कम या ज्यादा हो सकती है। जब एक गवर्नर और चपरासीकी तनखाहमें इतना फर्क हो तब सूबेका पूरा शासन-तंत्र आम लोगोके भलेके लिए सामाजिक और उन्नत व्यवस्था कायम

करनेमें उत्साहसे एक आदमीकी तरह कैसे काम कर सकता है ? थोड़ेमें, हम चाहे अपनी नीची-से-नीची राष्ट्रीय आमदनीको लें, नीचे-से-नीचे चपरासीकी तनख्वाहको लें, या चोटीपर खड़े गवर्नरकी तनख्वाहको लें, हमें दुनियामें हिंदुस्तानकी मिसाल कहीं नहीं मिलेगी।

"जब सूबोंके गवर्नरोंको इतनी बड़ी-बड़ी रकमें दी जाती हैं तब हम दूसरे ऊंची-ऊंची रकमें पानेवाले सरकारी हाकिमोंकी तनख्वाहें घटानेके बारेमें कैसे सोच सकते हैं ? अगर ऊंची तनख्वाहें घटाई नहीं जा सकतीं और नीची तनख्वाहें बढ़ाई नहीं जा सकतीं तो सूबोंके माल-मंत्री सारी प्रजाको शिक्षा देने, या डॉक्टरी सुभीते देने वगैरहकी योजनाओंको अमलमें लानेके लिए पैसा कहांसे लावें ? हम इस भ्रममें न रहें कि आजादीके आते ही कलकी भयंकर गरीबीवाला राष्ट्र थोड़े ही समयमें धनी और उन्नत राष्ट्र बन जायगा, ताकि वह अपने गवर्नरों और दूसरे ऊंचे हाकिमोंको बड़ी-बड़ी तनख्वाहें दे सके। सोवियट यूनियनको अपनी राष्ट्रीय आमदनी बढ़ानेके लिए तीन पंचवर्षीय योजनाएं बनानेकी जरूरत पड़ी। बंबई-योजना बनानेवाले लोगोंने भी १०० अरब रुपयेकी पूंजी लगानेपर १५ सालके आखिरमें हर हिंदुस्तानीकी औसत सालाना आमदनी १३० रुपये ही कूती है। इसलिए हिंदुस्तानके एक ही दिनमें धनी बन जानेके सुनहले सपने जितनी जल्दी छोड़ दिए जायं, उतना ही हम सबके लिए अच्छा होगा। सत्य बड़ा कठोर है और हमें ईमानदारीसे उसका भलीभांति सामना करना चाहिए। हम अपने हाकिमोंको इतनी बड़ी-बड़ी रकमें नहीं दे सकते।"

—टी० के० बेंग

हालांकि मैं प्रो० बेंगद्वारा दिए हुए आंकड़ोंके बारेमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कह सकता, फिर भी उन्होंने हिंदु-स्तानके गवर्नरों और दूसरे ऊंचे हाकिमोंकी बड़ी-बड़ी तन-

खाहोंके बारेमे और हमारी सरकारोंद्वारा अपने नौकरोंको दी जानेवाली ऊंची-से-ऊंची और नीची-से-नीची तनखाहोंकी भयंकर विषमता या फर्कके बारेमे जो कुछ लिखा है, उसका समर्थन करनेमे मुझे कोई हिचकिचाहट नही है ।

नई दिल्ली, २–११–'४७

: ४४ :

दो अमेरिकन दोस्तोंका दिलासा

मेरे पास अमेरिकन दोस्तोंके, जिन्हे मैं जानता भी नही, बहुतसे खत आते है। उनमेसे दो ऐसे दोस्तोके खतोंमेंसे नीचेके अंश यहां देने लायक मालूम होते है :

"अपने देशकी आजकी दुर्दशाके कारण आपको जो भारी दुःख हो रहा है उसका यह तकाजा है कि मैं हिंदुस्तानकी मौजूदा दुःखभरी घटनाओके बारेमें आपके मनमें उठ रहे विचारों और चिंताओमें दखल दूं और आपको यह याद दिलाऊं कि आपके सुंदर और प्रेरणाभरे शब्दोने दुनियाके हर कोनेमें जड़ जमा ली है ।

"यह तो स्वाभाविक बात है कि इन दुःखभरी घटनाओके कारण आप किसी कदर निराशा-सी महसूस करें। मेरे खत लिखनेका यही मतलब है कि आपकी यह निराशा बहुत ज्यादा नहीं बढ़नी चाहिए और आपको पस्तहिम्मत तो कभी होना ही नही चाहिए ।

"बीज कभी एकदमसे सुंदर और खुशबूदार फूलका रूप नही लेता। इसके लिए उसे पहले सड़ना होता है, उगना होता है और विकासके खास दरजोंसे गुजरना पड़ता है । और अगर विकास या तरक्कीके किसी दरजे-

पर उसमें कोई गड़बड़ी पैदा होती है तो उस समय उसके पास मालीका हाजिर रहना सबसे जरूरी हो जाता है। जब माली रोगी पौधेकी सार-संभालके निःस्वार्थ काममें पूरी तरह खो जाता है तब शायद वह अपने बगीचेके दूसरे पौधोंके विकासको पूरी तरह नहीं देख सकता, जो बढ़कर मानो अपने दुःखी भाईकी सेवा और हमदर्दीमें उसका साथ दे रहे हों।

"मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप दुनियाके सारे देशोंके सारे वर्गों, जातियों और धर्मोंके बेशुमार लोगोंका खयाल करें। वे सब भी आज आपके साथ शांतिके लिए भगवानसे प्रार्थना कर रहे हैं। हम सब, जिनकी आशाओंको आपने इतने अच्छे ढंगसे जाहिर किया है और जिन्हें शांतिके विज्ञानकी मददसे पाई गई आपकी बड़ी-बड़ी विजयोंसे नया बल और नया साहस मिला है, एक साथ मिलकर यह प्रार्थना करते हैं कि भगवान आपको आशीर्वाद दे और अपने गौरवपूर्ण कामको जारी रखनेके लिए जिंदा रखे, जिसका बहुत-सा हिस्सा अभी आपको पूरा करना है।"

हो सकता है कि इन दोस्तोंका कहना सच साबित हो और अभीतक हिंदुस्तान जिस पागलपनभरे रक्तपातसे गुजर रहा है—हालांकि पहलेका गुस्सा और पागलपन अब कम हुआ दिखाई देता है—वह इतिहासमें असाधारण न साबित हो। लेकिन आज हिंदुस्तान जिस हालतसे गुजर रहा है उसे हमें तो असाधारण ही मानना चाहिए। अगर हम यह मानें कि हिंदुस्तानने जैसी आजादी पाई है, उसका श्रेय अहिंसाको है तो जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, हिंदुस्तानकी अहिंसक लड़ाई केवल नामकी ही थी, असलमें वह कमजोरोंका निष्क्रिय प्रतिरोध था। इस बातकी सचाई हम हिंदुस्तानकी आजकी घटनाओंमें प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

नई दिल्ली, ६–११–'४७

: ४५ :

'सिर्फ मुसलमानोंके लिए'

एक खत लिखनेवाले भाईने इस बातकी तरफ मेरा ध्यान खींचा है कि पहले मैंने रेलवे स्टेशनोपर हिंदुओं और मुसलमानोंके पानीके लिए अलग-अलग बरतनोंके इस्तेमालको बुरा बताया था, लेकिन आज तो सिर्फ मुसलमानोके लिए और गैर-मुसलमानों या हिंदुओंके लिए अलग डिब्बे रिजर्व किए जाते है। मै नही जानता कि यह बुराई कहांतक फैली है, लेकिन मैं यह जरूर जानता हूं कि यह भेद-भाव हिंदुओं और सिखोंके लिए बड़ी शर्मकी बात है। मेरे खयालमे सिर्फ मुसलमानोंकी जानकी हिफाजत करनेके लिए ही रेलवेवालोंको यह फर्क करना जरूरी मालूम हुआ है। अगर हिंदू और सिख लोग मुसलमान मुसाफिरोंके साथ बेजान मालअसवाबकी तरह कभी सलूक न करनेका इरादा कर लें और रेलवे अधिकारियोको इस बातका यकीन दिला दें कि ऐसा गुनाह वे फिर कभी न करेंगे तो यह भेदभाव किसी भी दिन (जितना जल्दी हो उतना अच्छा) मिटाया जा सकता है। यह तभी हो सकता है, जब लोग अपने पापोंको खुले आम मंजूर करे और समझदार बन जायं। यह बात मै इस बातका विचार किए बिना कहता हूं कि पाकिस्तानमें आजतक क्या हुआ है या आगे क्या हो सकता है।

नई दिल्ली, ६-११-'४७

: ४६ :

अहिंसा उनका क्षेत्र नहीं

एक अखवारी रिपोर्टमे वताया गया है कि मेजर जनरल करिअप्पाने अहिंसाके वारेमे नीचे लिखी वात कही है :

"आजकी हालतोमें हिंदुस्तानको अहिंसासे कोई फायदा नहीं होगा। सिर्फ ताकतवर फौज ही हिंदुस्तानको दुनियाके सवसे बड़े राष्ट्रोंमें जगह दिला सकती है।"

मुझे डर है कि अहिंसाके वारेमे ऊपरकी वात कहकर वहुतसे विशेषज्ञोकी तरह जनरल करिअप्पा अपनी हदसे वाहर चले गए है और अनजानमे ही उन्होने अहिंसाकी ताकतके वारेमे वड़ी गलत धारणा व्यक्त कर दी है। कुदरती तौरपर अपने क्षेत्रमे काम करते हुए उन्हे अहिंसाकी ताकत और उसके कामका बहुत छिछला ज्ञान ही हो सकता है। जीवनभर अहिंसापर अमल करनेके कारण मै अहिंसाका माहिर होनेका दावा करता हूं, हालांकि मै बहुत अपूर्ण हूं। साफ और निश्चित शब्दोंमे मै यह कहना चाहता हूं कि मै जितना ज्यादा अहिंसापर अमल करता हूं, उतना ही साफ मुझे यह दिखाई देता है कि मैं अपने जीवनमे अहिंसाको पूरी तरह उतारनेकी हालतसे कोसों दूर हूं। इस तथ्य या सच्चाईकी जानकारी, जो कि दुनियामें आदमीका सवसे वड़ा फर्ज है, न होनेसे ही जनरल करिअप्पाने यह कहा है कि आजके जमानेमे हिंसाके सामने अहिंसा कुछ नही कर सकती, लेकिन मै तो हिम्मतके साथ यह कहता हूं कि इस ऐटम-वमके जमानेमें शुद्ध अहिंसा ही

ऐसी ताकत है, जो हिंसाकी सारी चालोंको नीचा दिखा सकती है। जनरल करिअप्पा, जिन्हे अब फौजी साइंस और फौजी अमलके अपने जानकार ब्रिटिश उस्तादोकी मदद नही मिल सकती, इस तरह अपनी सीमाको न लांघते तो अच्छा होता। जनरल करिअप्पासे ज्यादा बड़े-बड़े जनरलोंने काफी समझदारी और नम्रतासे साफ-साफ शब्दोंमें यह कबूल किया है कि अहिंसाकी ताकत क्या कुछ कर सकती है। इसके बारेमे उन्हें कहनेका कोई हक नहीं है। हम फौजी साइंस और फौजी अमलका भयानक दिवालियापन उसकी पैदाइशकी जगहमे ही देख रहे है। जो आदमी सट्टा बाजारमे जूआ खेलकर दिवालिया बना है, उसे क्या उस खास तरहके जूआकी तारीफके गीत गाने चाहिए?

नई दिल्ली, ७–११–'४७

: ४७ :

विषमताएं दूर की जायं

[सितंबरके शुरूमें बुनियादी शिक्षा (फंडामेंटल एजूकेशन) के बारेमें विचार करनेवाली 'रिजनल स्टडी कान्फरेंस' चीनमें हुई थी। हिंद सरकारके प्रचार-विभागद्वारा निकाले गए बुलेटिनमें गांधीजीका कान्फरंसको भेजा हुआ नीचे लिखा संदेश और उसकी टीका दी गई है।]

मुझे संयुक्त राष्ट्रोंके आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक

संघोंके कामोंमें गहरी दिलचस्पी है, जो शिक्षासंबंधी और सांस्कृतिक प्रयत्नोंके द्वारा शांति कायम करना चाहते हैं। मैं इस बातको पूरी तरह समझता हूं कि जबतक दुनियाके राष्ट्रोंमें आजकी शिक्षासंबंधी और सांस्कृतिक विषमताएं मौजूद रहेंगी तबतक सच्ची सुरक्षा और स्थायी शांति नहीं पैदा की जा सकती। जो कम साधनोंवाले देशोंके मुकाबले अधिक अंधेरेमें हैं, उनके दूर-से-दूरके घरोंमें भी ज्ञानका प्रकाश पहुंचाया जाय। मेरे खयालमें इस कामकी खास जिम्मेदारी उन देशोंपर है जो आर्थिक और शिक्षाके क्षेत्रमें दूसरोंसे आगे बढ़े हुए हैं। मैं आपकी कान्फरेंसकी हर तरहसे सफलता चाहता हूं और उम्मीद करता हूं कि आप सही ढंगकी शिक्षा देनेके लिए अमलमें लाई जा सकनेवाली कोई ऐसी योजना बना सकेंगे जिससे खासकर उन देशोंमें शिक्षा दी जा सके, जहां माली और दूसरी कमियोंकी वजहसे शिक्षाके कम सुभीते हैं।"

[ऊपरके संदेशपर टीका करते हुए बुलेटिनमें कहा गया है : "गांधीजीके संदेशका बड़ी इज्जत और श्रद्धासे स्वागत किया गया और उसके पढ़े जानेके वक्त कान्फरेंसमें इकट्ठे हुए सारे लोग खड़े रहे। कान्फरेंसने गांधीजीको उनके प्रेरणा देनेवाले संदेशके लिए धन्यवाद और तारीफका खत भेजा था।"]

नई दिल्ली, ७-११-'४७

: ४८ :

जब आशीर्वाद शाप बन जाता है

आशीर्वाद देनेसे इन्कार करते हुए मैंने एक दोस्तको नीचे लिखी बातें कही थीः

"एक साहसभरा योग्य काम शुरू करनेकी इच्छा रखनेवाले किसी भी व्यक्तिको किसीका आशीर्वाद लेनेकी इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए, देशके बड़े-से-बड़े आदमीके आशीर्वादकी भी नहीं। एक योग्य काम अपना आशीर्वाद अपने साथ ही लेकर चलता है। दूसरी तरफ अगर किसी अयोग्य कामको बाहरसे कोई आशीर्वाद मिलता है तो वह शाप बन जाता है, जैसा कि उसे बनना चाहिए। सचमुच, मैं इस नतीजेपर पहुंचा हूं कि बाहरी आशीर्वाद, किसीके कामकी एक-सी प्रगतिमें बाधक होता है; क्योंकि वह काम करनेवालेके दिलमें गलत आशा पैदा करता है और कामकी सफलताके लिए जिस मेहनत और चौकन्नेपनकी जरूरत है, उससे उसे दूर हटा देता है।"

अगरचे मैंने बहुतसे लोगोंसे अक्सर कुछ ऐसी ही बात कही है, फिर भी इस सोच-विचारकर तय की गई रायको उन लोगोंके फायदेके लिए यहां फिरसे दे देना अच्छा समझता हू, जो अपने कामोंके लिए आशीर्वाद मांगते रहते हैं। इसी तरह मुझे महान् व्यक्तियोंके स्मारकोंको आशीर्वाद देनेके लिए कहा गया है और मुझे लाचार होकर करीब-करीब वही जवाब देना पड़ा है, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है।

नई दिल्ली, ११–११–'४७

: ४६ :

कुरुक्षेत्रके निराश्रितोंसे[1]

मै नही जानता कि आजकी मेरी वात सिर्फ आप लोग ही सुन रहे है या दूसरे भी सुन रहे है। हालाकि मै ब्राडकास्ट-भवनसे वोल रहा हूं, लेकिन इस तरहकी चर्चामे मुझे दिलचस्पी नही है। दु.खियोके साथ दु.ख उठाना और उनके दु.खोंको दूर करना ही हमेशा मेरे जीवनका काम रहा है। इसलिए मुझे आशा है कि मेरे इस भाषणको आप लोग इसी नजरसे देखेगे।

जव मैने यह सुना कि कुरुक्षेत्रमें दो लाखसे ऊपर निराश्रित आ गए हैं और उनकी तादाद वढ़ती ही जा रही है तो मुझे वड़ा दु ख हुआ। यह खवर सुनते ही मेरी इच्छा हुई कि मै आप लोगोंसे आकर मिलूं। लेकिन मै एकदम दिल्ली नही छोड सकता था, क्योंकि यहां कांग्रेस वर्किंग कमेटीकी वैठके हो रही थी और उनमें मेरा हाजिर रहना जरूरी था। श्री घनश्यामदास विड़लाने सुझाया कि मैं आपको रेडियोपर संदेश दूं। इसलिए आपसे आज यह चर्चा कर रहा हूं।

दो दिन पहले अचानक जनरल नाथूसिंह, जिन्होने कुरुक्षेत्र-छावनीकी व्यवस्था की है, मुझसे मिलने आए और उन्होने मुझे आप लोगोकी मुसीवते कह सुनाईं। केंद्रीय सरकारने फौजको आपकी छावनीका वदोवस्त अपने हाथमे

---

[1] दिवाली के दिन आलइंडिया रेडियो से दिया गया भाषण।

लेनेके वास्ते इसलिए नही कहा कि वह आपको किसी तरह दबाना चाहती है। उसने ऐसा सिर्फ इसलिए किया कि फौजके लोग छावनीका बंदोबस्त करनेके आदी होते है और वे होशियारीसे यह सब करना जानते है।

जो दु.ख उठाते है, वे अपने दु:खोको सबसे ज्यादा जानते है। आपकी छावनी कोई मामूली नही है, जहां हर आदमी एक-दूसरेको जान सके। आपकी छावनी एक शहर है और अपने साथी निराश्रितोंसे आपका संबंध सिर्फ दु:ख-दर्दके जरिए ही है। आप सब एकसे दु:खी है।

मुझे यह जानकर दु.ख हुआ कि छावनीके अधिकारियो या अपने पड़ोसियोके साथ आपका वह सहयोग नही है, जो छावनी-के जीवनको कामयाब बनानेके लिए आपको करना चाहिए। मैं आपके दोषोंकी तरफ आपका ध्यान खीचकर आपकी सबसे अच्छी सेवा कर सकता हूं। वही मेरे जीवनका मंत्र रहा है, क्योंकि उसीमें सच्ची दोस्ती समाई हुई है। और मेरी सेवा सिर्फ आपके या हिंदुस्तानके लिए नही है, वह तो सारी दुनियाके लिए है; क्योंकि मै जाति या धर्मकी सीमाओंको नहीं मानता। अगर आप अपने दोषोको दूर कर दें तो आप अपने आपको ही नही, बल्कि सारे हिंदुस्तानको फायदा पहुंचाएंगे।

यह जानकर मेरे दिलको चोट पहुंचती है कि आपमेसे बहुतोंके पास रहनेको जगह नही है। यह सच्ची कठिनाई और मुसीबत है—खासकर पंजाबकी कड़ी ठंडमे, जो दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। आपकी सरकार आपको आराम पहुंचानेकी भरसक कोशिश कर रही है। वेशक, आपके

प्रधान मंत्रीपर इसका सवसे वडा वोझ है। राजकुमारी और डॉ० जीवराज मेहताके मातहत सरकारका स्वास्थ्य-विभाग भी आप लोगोकी मुसीवतोको कम करनेके लिए कड़ी मेहनत कर रहा है। इस संकटमें दूसरी कोई भी सरकार इससे अच्छा काम नही कर सकती थी। आपकी मुसीवतो और विपदाओकी कोई हद नही है और सरकारकी तो अपनी सीमाएं है ही। लेकिन आपको चाहिए कि आप अपने दु.ख-दर्दका जितनी हिम्मत, धीरज और खुशीसे सामना कर सके, करे।

आज दीवाली है; लेकिन आज आप या दूसरे कोई रोशनी नही कर सकते। आज खुशी मनानेका समय नही है। हमारी सवसे अच्छी दीवाली मनेगी आप लोगोंकी सेवा करके, और तब, जव आप सव उसे अपनी छावनीमे भाई-भाई-जैसे रहकर और हर एकको अपना सगा समझकर मनाएंगे। अगर आप ऐसा करेंगे तो अपनी मुसीवतोपर विजय पा लेंगे।

जनरल साहवने मुझे वताया कि छावनीमें आज भी कौन-कौन-सी वातोंकी जरूरत है। उन्होंने मुझसे कहा कि अब वहां ज्यादा निराश्रित न भेजे जायं। ऐसा मालूम होता है मानो निराश्रितोंको ठीक तरीकेसे अलग-अलग जगहोमे वांटा नही जाता। यह समझमें नही आता कि वे वहा क्यो आते हैं और मुकामी अधिकारियोको पहलेसे जताए विना अलग-अलग जगहोंमे इतनी वडी तादादमे क्यो इकट्ठे कर दिए जाते है ? कल शामको मैंने प्रार्थनाके वादके अपने भाषणमे ऐसी हालत पैदा करनेके लिए पूरवी पंजावकी सरकारकी टीका की थी। मुझे अभी-अभी वहाकी सरकारके एक मत्रीका

खत मिला है, जिसमे कहा गया है कि यह हमारा दोष नही है, इसके लिए केंद्रीय सरकार जिम्मेदार है।

अब केंद्रकी या सूबोंकी सारी सरकारें जनताकी सरकारें हैं। इसलिए एकका दूसरीपर इस तरह दोष डालना शोभा नही देता। सबको मिलकर जनताके भलेके लिए काम करना चाहिए। मे यह सब इसलिए कहता हूं कि आप लोग भी अपनी जिम्मेदारी समझें।

आपको छावनीमे अनुशासन कायम रखनेमे मदद करनी चाहिए। छावनीकी सफाईका काम आपको अपने हाथमे ले लेना चाहिए। मै पंजाबको मार्शल लॉ के दिनोंसे अच्छी तरह जानता हूं। मैने पंजावियोंके गुणों और दोषोंको पहचाना है। उनमेंसे एक दोष—और वह सिर्फ पंजाबियोंका ही नही है—यह है कि उन्हें समाजी आरोग्य और सफाईका बिलकुल ज्ञान नही है। इसीलिए मैने अक्सर कहा है कि हम सबको हरिजन बन जाना चाहिए। अगर हम ऐसा करेंगे तो ऊंचे उठेंगे। इसलिए मैं कहता हूं कि आपमेंसे हर एक—मर्द, औरतें और बच्चे भी—अपने डाक्टरों और छावनीके अफसरोंको कुरुक्षेत्रको साफ रखनेमें मदद करें।

दूसरी वात जो मै आपसे कहना चाहता हूं वह यह है कि आप अपना राशन बांटकर खाइए। जो कुछ आपको मिले, उसमें सतोष कीजिए। न तो अपने हिस्सेसे ज्यादा लीजिए और न ज्यादाकी मांग कीजिए। समाजी रसोड़े चलानेकी कला हमें सीखनी चाहिए। इस तरहसे भी आप एक-दूसरेकी सेवा कर सकते है।

मुझे इस खतरेकी तरफ भी आपका ध्यान खीचना चाहिए कि आप कही आलसकी रोटी खानेके आदी न बन जाएं। आपको रोटी कमानेके लिए शरीर-श्रम करना चाहिए। मुमकिन है, आप यह सोचे कि आपके लिए हर बातका इंतजाम करना सरकारका फर्ज है। सरकारका फर्ज तो है ही, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आपका फर्ज खत्म हो जाता है। आपको सिर्फ अपने ही लिए नही, बल्कि दूसरोंके लिए भी जीना चाहिए। आलस हर एकको नीचे गिराता है। वह हमें इस संकटको कामयाबीसे पार करनेमें तो मदद कर ही नही सकता।

गोवाकी एक बहन मुझसे मिलने आई थी। उनसे मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आपकी छावनीकी बहुत-सी औरते कातना चाहती है। कोई रचनात्मक काम जो हमें मदद पहुं-चाता है करनेकी इच्छा रखना अच्छी बात है। अब आप सबको राज्यपर बोझ बननेसे इन्कार कर देना चाहिए। आपको दूधमें शकरकी तरह अपने आसपासके वातावरणमें मिलकर एक हो जाना चाहिए और इस तरह आपकी सरकारपर जो बोझ आ पड़ा है, उसे हलका करनेमें मदद करनी चाहिए। सारी छावनियोंको सचमुच स्वावलंबी बनना चाहिए। लेकिन आज आपके सामने वह आदर्श रखना शायद बहुत ऊंची बात होगी। फिर भी, मै आपसे यह जरूर कहूंगा कि आपको किसी भी कामसे नफरत नही करनी चाहिए। सेवाका जो कोई भी काम आपके सामने आए, उसे आपको खुशी-खुशी करना चाहिए और इस तरह कुरुक्षेत्रको आदर्श जगह बनाना चाहिए।

लोगोंने मेरी गरम कपड़ो, रजाइयो और कबलोंकी अपीलको सुनकर उदारतासे दान दिया है। सरदार पटेलकी अपीलका भी उन्होंने अच्छा स्वागत किया है। इन चीजोमे आपका भी हिस्सा है; लेकिन अगर आप लोग आपसमे झगड़ेंगे और कुछ लोग अपनी जरूरतसे ज्यादा हिस्सा लेगें तो आपको ही नुक्सान होगा। आज भी आप बड़ी-बड़ी मुसीबते उठा रहे है, लेकिन आपके गलत कामसे वे और ज्यादा बढ जायगी।

अंतमें, मै उन लोगोमेसे नही हूं जो यह विश्वास करते है कि आप, जो पाकिस्तानमे अपनी जमीने और घरवार छोड़कर यहां आ गए है, वहांसे हमेशाके लिए उखाड़ दिए गए है। न मै यही विश्वास करता हूं कि उन मुसलमानोंके साथ ऐसा बरताव किया जायगा, जिन्हे हिंदुस्तान छोड़नेपर मजबूर किया गया है। मै तबतक चैन नहीं लूंगा और तबतक भरसक कोशिश करता रहूंगा, जबतक सब लोग इज्जत और सलामतीके साथ लौटकर उन जगहोंमे बस नही जाते जहांसे वे आज निकाले गए हें। जब तक मै जिंदा रहूंगा तबतक इसी उद्देश्यके लिए काम करूंगा। मरे हुए लोग तो जिलाए नही जा सकते, लेकिन जिंदोंके लिये तो हम काम कर सकते है। अगर हम ऐसा नहीं करेगे तो हिंदुस्तान और पाकिस्तानके नामपर हमेशा-के लिए कालिख पुत जायगी और उससे हम दोनों बरबाद हो जायंगे।

नई दिल्ली, १२-११-'४७

: ५० :

मानसशास्त्रीय टीका

रिचर्ड ग्रेग साहबसे तो 'हरिजन'के पढनेवाले परिचित होंगे ही। वह शातिनिकेतनमे रहे थे और कई बरस हुए, मेरे साथ साबरमतीमे भी थे। वह मुझे लिखते है

"मैं बहुत जानता नहीं हूं, इसलिए हिचकिचाता हूं। फिर भी आपको एक विचार भेजनेका साहस करता हूं। अगर हम हिंदुस्तानके आजके जातीय लड़ाई-झगड़ोंको उस विचारसे देखें तो शायद हमें लोगोंका नैतिक दोष कुछ कम नजर आएगा और आगेके लिए हमें आशा और बल भी मिलेगा।

"मेरी रायमें बहुत मुमकिन है कि यह हिंसा जातीय घृणा और अविश्वासको उतना नहीं बताती, जितना कि जनताके गुस्सेको, जो उसकी पीड़ा और उसपर सदियोसे होनेवाले जुल्मके कारण उसके दिलमें दबा पड़ा था। यह जुल्म केवल विदेशी राज्यके ही कारण न था। इसमें विदेशी आधुनिक सामाजिक, आर्थिक और माली तरीके भी शामिल थे, जो उन पुराने धार्मिक तरीकोसे बिलकुल उलटे थे जो कि जनताके स्वभावका एक अंग बन गए थे। विदेशी तरीकोसे मेरा मतलब है अंग्रेजी जमींदारी-प्रथा, अधिक सूदखोरी, भारी कर या महसूल जो वस्तुके रूपमें नहीं, बल्कि नकदीके रूपमें लिए जाते है, और दूसरे हस्तक्षेप, जो उन्होंने गांववालोंके उस जीवनमें किए, जिसे सब जातियां सदियोसे बिताती चली आ रही थीं।

"मनोविज्ञान हमें बताता है कि बचपनकी सख्त नाकामियां व्यक्तिके जीवनमें देरतक दबी पड़ी रहती है, चाहे उनका कारण न भी रहा हो। बादमें वह सुलगती हुई आग कभी भी कोई उत्तेजना मिलनेपर भड़क उठती है और वह गुस्सा हिंसाके रूपमें बेगुनाहोपर निकल पड़ता है।

यहूदियोपर यूरोपमें जो जुल्म हुए हैं उनकी और दूसरे कई हिंसक कामोकी जड़ इस तरह हम समझ सकते हैं। मैं मानता हूं कि हिंदुस्तानमें धर्मपर आधारित चुनावक्षेत्रोंने इस लड़ाई-झगड़ेका रास्ता जरूर पैदा किया, लेकिन मैं यकीन करता हूं कि जो पुराना कारण मैंने आपको बताया है, वही उस गुस्सेका सबसे बड़ा कारण है जो इस भयानक शक्तिसे आज फूट पड़ा है। ऐसा माननेसे हम समझ सकेंगे कि सब मुल्कोंके इतिहासमें जब कभी राजकी बागडोर एक हाथसे दूसरे हाथमें गई है तब क्यों हमेशा थोड़ी-बहुत खून-खराबी हुई है। जनता किसी-न-किसी जुल्मका शिकार तो होती ही है, जिसके कारण उसके दिलमें गुस्सा भरा होता है। जब ताकत एक हाथसे दूसरेके हाथमें जाती है, या कोई स्वार्थी नेता इसका नाजायज फायदा उठाते हैं तो वह गुस्सा भड़क उठता है।

"अगर मेरा विचार ठीक है तो यह मालूम होता है कि हिंदुस्तानकी जातीय नफरत और अविश्वासकी बुनियाद उतनी गहरी नहीं है, जितनी आज दिखाई देती है। इसके मानी यह भी है कि जब आप अपने लोगोको उनके पुराने जीवनके तरीकोपर फिर ला सकेंगे और सबसे ज्यादा जोर धर्म और छोटी संस्थाओ—यानी ग्राम-पंचायत और सम्मिलित कुटुंब—पर देंगे तो लोगोंकी शक्ति हिंसासे फिरकर इन कामोमें लग जायगी। अगर खादीका काम शरणार्थियोमें किया जाय तो उनकी शक्ति ऐसे ही अच्छे रास्ते लग जायगी। इस रास्ते बढ़नेमें मुझे आशा नजर आती है।

"यदि मेरे इस पत्रमें कहीं धृष्टता दिखाई दे तो क्षमा कीजिए। मैंने इस उम्मीदसे यह खत लिखा है कि बाहरका एक मामूली आदमी, सिर्फ इसलिए कि वह बाहर है, शायद आशाकी झलक देख पाए, जिसे लड़ाईकी धूल और बदहवासीमें देखना इतना आसान नहीं। जो हो, मुझे आपसे और हिंदुस्तानसे प्यार है।"

बहुतसे मानसशास्त्रियोने मुझे मनोविज्ञानकी विद्या

सीखनेको कहा है; लेकिन समय न होनेकी वजहसे, मुझे दु:ख है कि मैं ऐसा कर नही पाया। ग्रेग साहबका खत मेरी समस्या हल नही करता और न मेरे दिलमे मनोविज्ञान जाननेका जबरदस्त उत्साह ही पैदा करता है। उनकी दलीलसे मेरा मन साफ नही, उलटा धुधला होता है। 'भविष्यके लिए आशा' तो मैंने कभी खोई नही और न खोनेवाला हू, क्योंकि वह तो मेरे अहिंसाके अमर विश्वासमे है ही। हा, मेरे साथ यह बात जरूर हुई है कि मै पहचान गया हू कि संभवतः अहिंसा चलानेकी मेरी कलामे कोई दोप है। वास्तवमे अंग्रेजी राजके खिलाफ तीस सालकी अहिसक लड़ाईमे हमने अहिसाको समझा नही। इसलिए जो शांति जनताने बहुत धीरजसे उस लड़ाईके दौरानमे रखी, वह भीतरकी नही, ऊपरकी ही थी। जिस वक्त अंग्रेजी राज गया, उसके दिलका गुस्सा बाहर निकला। यह कुदरती था कि वह गुस्सा जातीय लड़ाईमे फट पड़े, क्योंकि उस गुस्सेको सिर्फ अंग्रेजी बंदूकोंने दबाकर रखा था। यह मेरी रायमें बिलकुल दुरुस्त और मानने योग्य है। इसमें किसी उम्मीदके टूटनेकी कोई गुंजाइश नही। मेरी अहिंसा चलानेकी कला नाकाम रही, तो क्या? उससे अहिसामे विश्वास थोड़े उठ सकता है? उलटे, यह जानकर कि मेरे तरीकेमे कोई दोष हो सकता है, मेरा विश्वास संभवतः और भी मजबूत हो जाता है।

नई दिल्ली, १२–११–'४७

: ५१ :

बेमेल नहीं

'हरिजन' के एक ग्राहकने मेरे सामने नीचेकी बात रखी है, जो उन्हे एक पहेली मालूम होती है। उसका मैने नीचे लिखा जवाब भेजा है —

"एक बार आपने यह कबूल किया है कि आपने ईश्वरको प्रत्यक्ष नहीं देखा है। और 'सत्यके मेरे अनुभव' नामकी अपनी किताबकी भूमिकामें आपने कहा है कि आपने सत्यके रूपमें भगवानको बहुत दूरसे जीता-जागता देखा है। ये दोनो बातें बेमेल मालूम होती हैं। इन दोनोंको मैं ठीक-ठीक समझ सकूं, इसलिए विस्तारसे समझानेकी मेहरबानी कीजिए।"

ईश्वरको आखोसे प्रत्यक्ष देखनेमे और उसे बड़ी दूरसे सत्यके रूपमे जीता-जागता देखनेमें बहुत बडा अंतर है। मेरी रायमे ऊपरकी दोनो बाते एक दूसरीकी विरोधी नही है, बल्कि उनमेंसे हर एक दूसरीको समझाती हैं। हम हिमालयको बहुत दूरसे देखते हे और जब हम उसकी चोटीपर होते हैं तो हम उसे प्रत्यक्ष देखते है। लाखो आदमी हिमालयको सैकड़ो मील दूरसे देख सकते है, बशर्ते कि वह दिखाई देनेवाली दूरीके भीतर हो। लेकिन बरसोंकी मुसीबतोंके बाद उसकी चोटीपर पहुंचकर तो थोड़े ही लोग उसे प्रत्यक्ष देखते है। इसे 'हरिजन'के कॉलमोंमें विस्तारसे समझानेकी जरूरत नही मालूम होती। फिर भी, मै आपका खत और मेरा जवाब 'हरिजन'में छपानेके लिए भेजता हू, ताकि आपके बताए हुए

दोनो बयानोमे आपकी तरह किसीको विरोध मालूम होता हो तो उसकी उलझन दूर हो जाय।

नई दिल्ली, १३-११-'४७

: ५२ :

अंकुश

मुझे तो यह साफ नजर आता जा रहा है कि खुराक, कपडे वगैरहपर जो अंकुश रखा गया है, वह गलत है। मेरे इस विचारके समर्थनमे मेरे पास खत और तार आते रहते है।

इसके विरोधमे ऐसे लोग है जो अपने आपको इस विषयके विशेषज्ञ मानते है। इसलिए वे लोग पंडिताईभरे लेख लिखते है। उनमे पुरानी विदेशी सरकारके नौकर भी है। इनमेसे इरादतन किसीकी उपेक्षा करनेकी मेरी जरा भी इच्छा नही है। फिर भी अगर उनकी बातको आंख मूंदकर न माननेमे ही उनकी उपेक्षा होती हो तो मै लाचार हूं। सूरजकी गर्मीमे तपता हुआ कोई आदमी किसी छांहमे रहनेवाले पंडितकी यह बात कैसे मान सकता है कि सूरजकी गर्मी, गर्मी नही है और जो आदमी तप रहा है, वह भ्रममें है? यही हालत मेरी है।

विशेषज्ञ और सरकारी नौकर सच्चे दिलसे मानते है कि हमारे देशमे पूरा अनाज नही है। मै इससे उलटा मानता हू और साथ ही यह कहता हू कि अगर देशमे अनाजकी कमी हो तो वह बहुतसे आदमियोंकी थोडी-सी कोशिशसे दूर की जा सकती

है। लोग आलसी बन बैठें या धोखा ही देते रहें, और इस आलस और धोखेकी वजहसे मरें तो उसमें हुकूमत क्या करे ? हुकूमत आलस मिटानेके उपाय सोचे, धोखा दूर करनेकी कोशिश करे, न कि आलसियों और दगाबाजोंके लिए चाहे जैसे, चाहे जहांसे, अनाज लाकर उन्हें दे और इस तरह उनकी दगाबाजी और आलसको बढाए।

मगर मैं कोई लेख लिखने नहीं बैठा हूं। गुजरातके लोग व्यापार करना जानते हैं। गुजरातमें चतुर किसान हैं। वहांकी मिट्टी अच्छी है। पानी भी वहां काफी है। उन लोगोंका क्या खयाल है ? क्या यह बात सही है कि आलस और धोखा अनाजकी कमीका आभास कराते हैं ? अगर न हो तो बंबईमें अंकुश किसलिए है ? अगर आलस और धोखा काम कर रहे हैं तो वे क्यों दूर नहीं होते ? गुजरात ही नहीं, पूरे बंबई इलाकेके किसान और व्यापारी मिलकर क्यों नहीं बताते कि उनके यहां अनाज और कपड़ेकी कमी नहीं है, और अगर हो तो वह तुरंत दूर हो सकती है ? क्या वे इतना नहीं कर सकते ?

नई दिल्ली, १७–११–'४७

: ५३ :

गुरु नानकका जन्म-दिन

मुझे डर है कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, वह सब नहीं कह सकूंगा। मेरी उम्मीद थी कि आपने फौजी तालीम ली है,

इसलिए आप शांति रखेंगे। यहां बहनें बहुत आवाज कर रही हैं। कुछ बरस पहले जब मैं अमृतसर गया था तो वहां भी ऐसा ही हुआ था। दुःखकी बात है कि बहनोंतक वह तालीम नही पहुची। यह मर्दोंका गुनाह है।

मैं जब यहा आ रहा था तो मैंने रास्तेमें केले व सतरेके छिलके इधर-उधर पड़े देखे। उनसे जगह ही गंदी नही हुई थी; बल्कि उसपर चलना भी खतरनाक हो गया था। अपने घरोंके फर्शोंकी तरह ही हमे सडकोको साफ रखना चाहिए। मैंने देखा है कि कूडेदान नही होता तो अनुशासन-प्रिय लोग छिलकोको कागजमें बांधकर थोडी देरको जेबमे डाल लेते है और फिर नियत स्थानपर फेक देते है। अगर लोगोने सामाजिक आचार-विचारके नियम सीख लिए है तो उनका कर्त्तव्य है कि उन्हे स्त्रियोको भी सिखावें।

आज दस बजे मेरे पास बाबा बचित्तरसिह आए थे। उन्होंने कहा कि आज [1]गुरु नानकका जन्म-दिन है। उसमे शामिल होनेके लिए आपको निमंत्रण देनेको सिक्खोकी तरफसे मुझे भेजा गया है। उन्होंने यह भी बताया कि सभामे एक लाखसे ऊपर स्त्री-पुरुष इकट्ठे होंगे, जिनमेसे अधिकतर पश्चिमी पाकिस्तानके दुःखी है। मैंने कहा कि मुझको क्यो ले जाते है? सिक्ख आज मुझे दुश्मन मानते है। फिर भी उन्होने कहा कि आपको आना ही होगा और जो कुछ कहना चाहते है, कह सकते है। मैंने कहा कि सभामें दो-एक बात कहूंगा।

---

[1] कार्त्तिक पूर्णिमा।

माता बालकको कड़वी दवा पिलाती है । यह बच्चेको अच्छा नही लगता, फिर भी माता पिलाती है । मुझे मेरी मां इसी तरह कड़वी दवा देती थी, फिर भी मै उसकी गोदमे छिप जाता था। मैंने सिक्खोको जो कुछ कहा है, उसमेसे एक भी शब्द वापस नही लेना चाहता हू, क्योकि मै तो आपका सेवक हू, भाई हूं ।

मेरे साथ सर दातारसिंहकी लडकी है । उनका कितना नुकसान हुआ है ? वह ताराज (बरबाद) हो गए है, फिर भी आंसू नही गिराते है । यह देखकर मुझे आनंद होता है । वह मुसलमानोको दुश्मन नही मानते है । कहा जाता है कि एक सिक्ख सवा लाखके बराबर है । सवा लाख सिक्खोके बीचमे मुट्ठीभर मुसलमान नही रह सकते क्या ? मुझसे पूछो तो मै कहूगा कि झगडा शुरू तो पाकिस्तानने किया है, लेकिन पूर्वी पंजाबमे हिंदुओ और सिक्खोंने कुछ कम नही किया। हिंदू, सिक्खो-जैसे बहादुर नही है । सिक्खोने तो तलवार चलाना सीखा है । हिंदुओको यह तालीम नही मिली ।

आप देखते है कि शेख अब्दुल्ला मेरे साथ है । मैंने तो कहा था कि वे कैसे यहां आ सकते है ? आज तो मुसलमान सिक्खो और हिंदुओंके दुश्मन हो गए है । मगर बाबाने कहा कि वह तो सच्चे शेरे-काश्मीर हैं । उन्होंने बडा भारी काम किया हैं । काश्मीरमें सब मिल-जुलकर रहते हैं । सिक्ख उन्हे मानते हैं । जम्मूमे हिंदुओ और सिक्खोने मुसलमानोको कतल किया है, फिर भी शेख अब्दुल्ला जम्मू चले गए । आजके शुभ दिन आपने मुझे और शेख साहबको आदरपूर्वक बुलाया, इसकी मुझे खुशी है ।

आजसे आप जिंदगीका नया पन्ना शुरू करे तब तो मेरे-

जैसा आदमी जिंदा रह सकता है। आज भी मुसलमानोको दिल्लीसे भगानेकी कोशिश चल रही है। मैंने आते समय चांदनी चौकमे एक भी मुसलमानको नही देखा। यह हम सबके लिए शर्मकी बात है। मुसलमानोंकी तादाद छोटी-सी है। उनको हलाल करना गुनाह है। अगर कोई मुसलमान बेवफा हो तो हुकूमत उससे लड़ेगी, उसे मारेगी। मगर हम क्यो कानून अपने हाथमें लें? आज हम बेगुनाहोंको मारनेके लिए तैयार हो जाते है। ऐसा करके आप कृपाण और सिक्ख धर्मको शर्मिदा करते हैं। इसलिए आजसे आप जिंदगी-का नया पन्ना शुरू करें। मै रावलपिंडी गया था। वहां क्या-क्या हुआ, सब जानता हूं। उसे कभी भूल नही सकता। आप लोग पश्चिमी पंजाबसे दुःखी होकर आए है, यह मै समझ सकता हूं, लेकिन हम गुस्सा करके क्या करेगें? बदला लेनेवाली हमारी हुकूमत तो है ही। गुरु गोविंदसिंहने बेगुनाहोपर कभी तलवार नही चलाई थी। उनके साथ मुसलमान भी रहते थे। गुरु नानकने जो सिखाया है, उसकी हम आज अवगणना कर रहे है। नाच-रंगसे धर्मको लजाते है। हिंदू, सिक्ख, ईसाई, अंग्रेज कोई भी गुनाह करे तो मुझे चुभता है और मुझे लगता है कि मै गुनाह करता हूं। मेरी तो आपसे यही प्रार्थना है कि आप अपने दिलोंको साफ करे और अपनी तलवारको म्यानमे रख दे। कोई बदमाशी करे तो हुकूमत उसे देख लेगी। गुरु ग्रन्थ-साहबसे मै यही अर्ज करता हूं कि वह हर एक सिक्खका दिल साफ बनावे, ताकि वे गुनाहका बदला गुनाहसे न ले।

: ५४ :

आशाकी झलक

जब हर तरफसे निराशा-ही-निराशा होने लगती है तो जब-तब आशाकी किरण भी दिखाई दे जाती है। इस आशाका स्रोत है 'हरिजन' संबंधी मेरे पत्र-व्यवहारकी फाइल, जो खाली समयमे मेरे पढ़नेके लिए सुरक्षित रखी गई है।

बोचासन रेजीडेंशियल स्कूलके शिवभाई पटेलका एक पत्र ऐसा ही है। वार्षिक उत्सवोंमे जितना काम उन्होंने किया है उसीका खुलासा इस पत्रमे है। आजकल हरिजन-आश्रम कहे जानेवाले पहलेके साबरमती सत्याग्रह-आश्रमकी गंगावहनने और परम उद्योगी रविशंकर महाराजने अपने साथ ही रहनेवाले दो पुत्रोंके सहयोगसे उन्हे बड़ी सहायता पहुंचाई है। हालहीमे जो जलसा हुआ था, उसमे एक विशेषता यह थी कि हमेशाकी तरह पैरसे चलनेवाली धुनाई-मशीनकी पूनियां काममे न लाकर इस बार तुनाई-पद्धतिका ही कार्यक्रम चला। इसी मौकेपर व्यवस्थापकोंने वहांके पिछड़े हुए लोगोंके बच्चोके लिए जो छात्रालय बनवानेका निश्चय किया था, वह बन गया है और उसमे दस छात्रोंको दाखिल करके कार्यका श्रीगणेश कर दिया गया है। सात साल बाद उन्हे सामान्य स्कूलोंके चारों दर्जे पास छात्रोंके लिए दिनका स्कूल खोलनेकी आज्ञा दी गई है। उन्हें आशा है कि अगले छः वर्षोंमे वे दर्जोंकी संख्या दसतक कर देंगे और अंग्रेजीके बजाय खादी, बढ़ईगिरी और कृषि-विज्ञानकी पढ़ाईकी व्यवस्था भी करेंगे। पिछले

वर्षोंके वावजूद इस साल विद्यार्थियोके अभिभावकोको अपने लड़कोंके चरित्र-निर्माणमे रस आने लगा है। नतीजा यह हुआ है कि पिछले अक्तूबरवाले जलसेके वाद चार महीनोके अंदर ही खूब सिगरेट फूकनेवाले और तेज चाय पीनेवाले लडकोने अपनी ये आदते छोड दी। लडकोके सुधारसे प्रभावित होकर उनके संरक्षकोंने भी मुंहसे चिमनियोकी तरह धुआं उगलनेवाली और पाचन-शक्तिको खराव कर देने-वाली अपनी लत छोड़ दी है। पहले जव लड़कोको स्कूलमे भर्ती किया गया था तव वे न तो सीधे वैठ सकते थे और न पांच मिनटके लिए चुप ही रह सकते थे। अब उन्हे एक घंटेतक शांत होकर हाथसे सूत कातना रुचता है। संस्थाकी गोशालाकी देखभाल गंगावहन करती है और सबको दूध मिल जाय इसका ध्यान रखती है।

उत्सवके दिनोंमें विद्यार्थी अच्छे-अच्छे सवाद करते थे जिन्हे सुननेके लिए काफी लोग इकट्ठे होते थे। लडकोंने विना किसी हिचकके खादीकी शक्लमे आनेसे पहलेकी रुईकी सभी क्रियाओंका प्रदर्शन किया। तेईस विद्यार्थियोंने खुशखत लिखाईकी प्रतियोगितामें भाग लिया जब कि इस विषयको ऐसी अवहेलनाकी दृष्टिसे देखा जाता है कि मानों खुशखत लिखाईका अच्छी शिक्षामे कोई स्थान ही नही है।

नई दिल्ली, २२–११–'४७

: ५५ :

जैसा सोचो वैसा ही करो

राजकुमारीने डॉ० माड़ रॉयडन द्वारा उनके पास भेजा गया एक खत मुझे पढनेके लिए दिया है। उस खतका संगत अंश मैं यहां देता हूं :

"यह देखकर मुझे सचमुच बड़ा अचरज होता है कि दुनियाका सबसे बड़ा ईसाई, ईसाई संप्रदायमेंसे नहीं है। पिछले दो-तीन हफ्तोंसे मैं नया लिखा हुआ आलबर्ट स्विट्जरका जीवन-चरित पढ़ रहा हूं। उसमें भी मुझे ऊपर बताया हुआ विरोध नजर आता है। हिंदुस्तानमें लोग स्विट्जरके नामसे परिचित हैं या नहीं, मैं नहीं जानता। मगर मुझे खुदको लगता है कि अपनी महत्तामें आज वह दुनियामें बेजोड़ है। आप शायद जानते होंगे कि 'सनातनी' ईसाई स्विट्जरको शककी नजरसे देखते हैं, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि हमारा उद्धार करनेवाले ईसामसीहके बारेमें उसका जितना चाहिए उतना ऊंचा खयाल नहीं है। और फिर भी आप मेरी बात मानें कि आज सारी दुनियामें ऐसा ईसाई नहीं है, जो स्विट्-जर-जैसी हिम्मत-भरी अडिग श्रद्धासे और पूरी-पूरी समर्पणकी भावनासे ईसामसीहका अनुसरण करता हो। फिर मैंने स्विट्जरकी फिलासफी पढ़ी, 'जीवनके बारेमें उसका पूज्य भाव' देखा और नाजारेथके यीशुके बारेमें उसके द्वारा हमेशा किए गए उल्लेखको पढ़ा। तब मुझे यकीन हो गया कि स्विट्जरने अपने पाठकोंके दिलोंमें ईशुको जितनी ऊंची जगह दी है, उतनी किसी दूसरेने नहीं दी। दूसरे दार्शनिकों और स्विट्जरमें सिर्फ इतना ही फर्क है कि स्विट्जर जो कुछ विचार करता है, लिखता है, या कहता है, उसपर अपने जीवनमें अमल किए बिना नहीं रहता; बल्कि वह विचार ही इस तरह करता है कि उसपर उसे अमल करना है।

अब मेरी समझमें आया कि क्यों उसके विचार, पाठकोंके मनपर अपनी कठोर और भयजनक प्रामाणिकताकी छाप डालते हैं। अमल करनेका खयाल रखे बगैर अगर आप विचार करते रहें तो सब किस्मकी झूठी बातोंका विचार करना आसान हो जाता है। अगर आपको पहलेसे ही इस बातका भान हो कि जो विचार आप करते हैं, उसपर आपको जीवनमें अमल करना है तो खयाल कीजिए कि कैसी बारीकीसे और कितने सच्चे दिलसे आप विचार करेंगे!"

नई दिल्ली, २२-११-'४७

: ५६ :

बहादुरी या बुज़दिलीकी मौत

एक बंगाली दोस्तने पूर्वी पाकिस्तानसे हिंदुओंके हिजरत करनेपर बंगालीमें एक लंबा खत लिखा है। उसका सार यह है कि अगरचे उन-जैसे कार्यकर्त्ता मेरी दलीलको समझते और उसकी तारीफ करते हैं, और साथ ही बहादुरी और बुजदिलीकी मौतके फर्कको भी समझते हैं, मगर मामूली आदमीको मेरे बयानमें हिजरत करनेकी ही सलाह नजर आती है। वह कहता है—

"अगर हर हालतमें मौतसे ही पाला पड़ना है तो धीरज रखनेकी कोई कीमत नहीं रह जाती; क्योंकि इन्सान मौतसे बचनेके लिए ही जीता है।"

इस दलीलमें उस बातको पहलेसे ही मान लिया गया है,

जिसे साबित करना है। इन्सान सिर्फ मौतसे बचनेके लिए ही नही जीता। अगर वह ऐसा करता है तो मेरी सलाह है कि वह ऐसा न करे। उसे मेरी सलाह है कि अगर वह ज्यादा न कर सके तो कम-से-कम मौत और जिंदगी दोनोंको प्यार करना सीखे। कोई कह सकता है कि यह एक मुश्किल बात है और इसपर अमल करना और भी मुश्किल है। मगर हर उचित और महान् काम मुश्किल तो होता ही है। ऊपर उठना हमेशा मुश्किल होता है। नीचे गिरना आसान है और उसमें अक्सर फिसलन होती है। जिंदगी वहीतक जीने लायक होती है, जहांतक मौतको दुश्मन नही, बल्कि दोस्त माना जाता है। जिंदगीके लालचोंको जीतनेके लिए मौतकी मदद लीजिए। मौतको टालनेके लिए एक बुजदिल आदमी अपनी इज्जत, अपनी औरत, अपनी लड़की, सब कुछ सौंप देता है और एक हिम्मतवर आदमी अपनी इज्जत खोनेके बजाय मौतसे भेंटना ज्यादा पसंद करता है। जब समय आएगा, जो कि आ सकता है, तब मैं अपनी सलाहको लोगोंकी कल्पनाके लिए नही छोड़ूंगा, बल्कि क्रियाकी भाषामें उसे करके दिखा दूंगा। आज अगर सिर्फ एक या दो ही आदमी मेरी सलाहपर चलते है या कोई भी नही चलते तो इससे उसकी कीमत घट नही जाती। शुरुआत हमेशा कुछ ही लोगोंसे होती है। एक आदमीसे भी शुरुआत होती है।

नई दिल्ली, २३-११-'४७

: ५७ :

नेशनल गार्ड

पूर्वी बंगालसे एक भाईने खत लिखकर मुझसे पूछा है :

"पाकिस्तानकी सरकार नेशनल गार्ड या किसी दूसरे नामसे एक स्वयंसेवक-सेना जरूर खड़ी करेगी। अगर हिंदुओंसे उसमें शामिल होनेके लिए कहा जाय तो वे क्या करें? अगर उस फौजमें सिर्फ मुसलमान ही लिए जायं तो हिंदू क्या करें?"

मौजूदा परिस्थितिमें इस सवालका जवाब देना मुश्किल है। करीब-करीब हर मुसलमानपर यूनियनमें शक किया जाता है। इसी तरह चाहे पूर्वी पाकिस्तान हो, चाहे पश्चिमी, दोनोंमें हिंदुओं और सिक्खोंको शककी नजरसे देखा जाता है। अगर उस फौजमें भर्ती होनेके लिए दिलसे बुलाया जाता है तो मेरी सलाह है कि हिंदू भर्ती हो जायं। बेशक भर्तीकी शर्तें सबके लिए एक-सी हों और किसीके धर्मके साथ कोई दस्त-दाजी न हो। और अगर उस फौजमें सिर्फ मुसलमान ही लिए गए और हिंदुओंको नहीं बुलाया गया तो आजकी परिस्थितिमें हिंदू चुपचाप बैठ जायं। कोई आंदोलन न करें और ऐसा करते हुए दिलोंमें भी गुस्सा न रखें।

नई दिल्ली, २३-११-'४७

: ५८ :

विश्वास नहीं होता

वही बंगाली भाई[1] लिखते हैं :

"पूर्वी बंगालकी सरकारने अपने गजटमें यह हुक्म निकाला है कि जो लोग अखंड बंगालकी नीतिकी हिमायत करेंगे, उन्हें मौतकी सजा दी जायगी।"

इस बातपर विश्वास कर सकनेके पहले मैं सरकारी हुक्मकी नकल देखना चाहूंगा। मुझे विश्वास है कि अगर इस तरहका कोई हुक्म होगा भी तो उसके ठीक-ठीक शब्दोंका मतलब दूसरा ही होगा। मैं पूर्वी बंगालमें अखंड बंगालकी हिमायत करनेके अपराधको समझ सकता हूं। लगभग सारे हिंदू और बहुतसे मुसलमान ऐसे मिलते हैं जो बंटवारेके खिलाफ राय रखते हैं। फिर भी, कोई पागल आदमी ही एक बार हो चुके बटवारेके सामने लड़नेकी हिम्मत करेगा। बंटा हुआ बंगाल सिर्फ दोनों पार्टियोंकी मरजीसे ही अखंड बन सकेगा। लेकिन अगर किसीको जनताकी रायकी एकताकी तरफ बदलनेकी इजाजत न दी जाय तब तो दोनों पार्टियोंकी वह मंजूरी नामुमकिन हो जायगी। ऐसा पागलपनभरा हुक्म कोई सरकार न निकालेगी।

नई दिल्ली, २३–११–'४७

---

[1] २३-११-'४७ के पिछले लेखमें जिनका जिक्र है।

: ५६ :

भाषावार विभाजन

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते हैं :—

"नई-नई विद्यापीठें खोलनेके बारेमें आपका लेख 'हरिजन' में पढ़ा। मैं यह मानता हूं कि भाषावार प्रान्तोकी रचनाके पहले नई विद्यापीठें स्थापित करनेमें कठिनाई होगी। लेकिन प्रान्तोको भाषाके आधारपर बनानेमें कांग्रेसकी ओरसे इतनी ढिलाई क्यों हो रही है, यह मैं समझ नहीं सका हूं। कांग्रेस सन् १९२० से ही यह मानती आई है कि प्रान्तोकी पुनर्रचना विविध-भाषाओंके अनुसार हो। लेकिन मौका आनेपर अब इस कामको लम्बानेकी या टालनेकी कोशिश की जा रही है, ऐसा मेरा ख्याल है। विधान परिषद्में भी इस विषयको स्थगित-सा कर दिया गया है। यह बात मुझे उचित नहीं जान पडती। बिना भाषावार प्रान्त रचना हुए न तो शिक्षाका माध्यम मातृभाषाको बनाना आसान होगा और न अंग्रेजीको राजभाषाके स्थानसे हटाना सरल होगा। बम्बई, मद्रास और मध्यप्रान्त बरार जैसे बेढंगे और बहुभाषी प्रान्तोका हमारे नये विधानमें स्थान ही नहीं होना चाहिए। और अगर हमने इस प्रश्नको टालनेकी कोशिश की तो एक ही प्रान्तके विभिन्न भाषा बोलनेवालोका पारस्परिक विद्वेष अधिक बढ़ता जायगा। बहुभाषी प्रान्त रखनेसे भाषा-द्वेष कम नही होगा, बल्कि दिन-दिन बढेगा, यह स्पष्ट है। आज देशके सामने हिन्दू-मुस्लिम समस्याने भयकर रूप धारण किया है और हमारे नेताओंकी शक्तियां उसी ओर अधिक लगी हैं, यह ठीक है। लेकिन अगर देशका बटवारा करना ही था तो कई साल पहले ही कर लेना था। उस हालतमें इतनी खून-खराबी न होती। इसी तरह अगर हमें प्रान्तोका बंटवारा भाषावार करना है तो देरी करनेसे

कोई फायदा नही होगा। नुकसान भी होगा, क्योंकि कटुता बढ़ती जायगी।"

फिर भी भाषावार सूबोंके विभाजनमें देर होती है, उसका सबब है। उसका कारण आजका विगडा हुआ वायुमडल है। आज हरएक आदमी अपना ही देवता है, मुल्कका कोई नही। मुल्ककी ओर जानेवाले, उसका भला सोचनेवाले लोग है जरूर, लेकिन उनकी सुने कौन? अपनी ओर खीचनेवाले लोग शोर मचाते है, इसलिए उनकी वात सव सुनते है। दुनिया ऐसी है न?

आज भाषावार सूबोंका विभाजन करनेमें झगडेका डर रहता है। उडिया भाषाको ही लीजिए। उड़ीसा अलग सूवा बन गया है, फिरभी कुछ-न-कुछ खीच रही ही है। एक ओर आंध्र, दूसरी ओर विहार और तीसरी ओर वंगाल है। कांग्रेस ने तो भाषावार विभाजन सन् १९२० मे किया। कानूनन तो उड़िया वोलनेवाले सूबेका ही हुआ। मद्रासके चार विभाग कैसे हो? वम्बईके कैसे? आपसमे मिलकर सव सूबे आवे और अपनी हद वना ले तो कानूनके अनुसार विभाग आज बन सकते है। आज हुकूमत यह वोझ उठा सकती है? कांग्रेसकी जो ताकत १९२० मे थी, वह आज है? आज उसकी चलती है?

आज तो दूसरे हकदार भी पैदा हो गए है। ऐसे मौकेपर हिन्दुस्तान वेहाल-सा लगता है। आज तो संघ (मेल) के बदले कुसघ (फूट) है, उन्नति के वदले अवनति है, जीवनके बदले मौत है। जव कौमी झगडे वद होगे तब हम समझ

सकेंगे कि सब ठीक हुआ है। ऐसी हालतमे भाषावार विभाजन लोग आपसमे मिलकर कर ले तो कानून आसान होगा, अन्यथा शायद नही।

नई दिल्ली. २४-११-'४७

: ६० :

इसमें तुलना कैसी ?

एक वजीरने कुछ दिनो पहले मुझसे पूछा था :

"कई बार मैंने सुना है कि धर्म और धर्माभिमान और स्वदेशाभिमानकी तुलना करें तो स्वदेशाभिमान ऊंचा ठहरता है। क्या आप इसे मानते है ?"

मैंने जवाब दिया, "मै नही मानता। एक ही जातिकी चीजोंके बीच तुलना की जा सकती है। अलग-अलग जातिकी चीजोंकी तुलना करना असभव है। हर चीज अपनी जगहपर रहते हुए दूसरी चीजोके बराबर ही कीमत रखती है। इन्सानको अपना धर्म और अपना देश दोनो प्यारे हैं। वह एकको देकर दूसरा नही लेगा। उसे दोनो एकसे प्रिय है। वह रावणकी चीज रावणको देगा और रामकी रामको। अगर रावण अपनी मर्यादा तोड दे तो रामका भक्त दूसरे रावणको ढूढने नही जायगा। मगर वह मर्यादाको तोडनेवाले रावणसे ही निपट लेगा।"

इस किस्मकी मुश्किलोंके बारेमे मुझे सत्याग्रह-जैसा अमूल्य शस्त्र मिला। एक मिसाल लीजिए। मान लीजिए कि

एक आदमीकी मां जिदा है, औरत जिदा है और उसकी एक लड़की है। अपनी-अपनी जगहपर ये तीनों उसे एक जैसी ही प्यारी होनी चाहिए। जब कोई कहता है कि अपनी औरतके खातिर इन्सान अपनी मांको और लड़कीको छोड़ सकता है तब मुझे यह जगली भूल मालूम पड़ती है। इससे उलटा भी वह नही कर सकता। अपनी मां या लड़कीके लिए औरतको भी वह नही छोड़ेगा। और मान लीजिए कि तीनो-मेसे एक भी अपनी मर्यादा छोड़ती है तो तीनो शक्तियोके बीचमे संतुलन बनाए रखनेके लिए वह सत्याग्रहकी नीतिका उपयोग करेगा।

नई दिल्ली, २९–११–'४७

: ६१ :

हिम्मत न हारिए

मैडम ऐडमड प्रिवेटके २७ अगस्त, १९४७ के पत्रका नीचेका हिस्सा यहां दिया जाता है :

"आज मुझे लगता है कि मैं आपको यह बता दू कि हिंदुस्तानकी पिछली महान् घटनाओका हमपर कैसा गहरा असर हुआ है। यहां मेरा मतलब हिंदुस्तानकी आजादीसे और उसपर हमें होनेवाले आनंदसे है।

"हां, हम जानते हैं कि आपको हिंदुस्तानके आजादी मिलजानेसे कोई खुशी नहीं हुई। हमने इस बारेमें आपका लेख 'हरिजन' में पढा है; लेकिन

बापू ! आप हिम्मत न हारिए। सोचिए, जरूर सोचिए कि हम पश्चिम-वालोंके लिए उसका क्या महत्त्व है। हिंदुस्तानने अपने विरोधीका खून बहाए बिना यह क्रांति की और वह आजाद हो गया। भूतकालसे मुकाबला करनेपर यह क्रांतिकारी घटना जबरदस्त तरक्की मालूम होती है। हिंदुस्तानकी यह कामयाबी इतनी ऊंची है कि इतिहासमें इतने बड़े पैमानेपर उसकी कहीं मिसाल नहीं मिलती।

"ओ बापू ! क्या खूनकी भयानक होली खेलकर हाल ही बाहर निकलनेवाले यूरोपके हम लोगोंके खातिर आप यह नहीं देख सकते कि हिंदुस्तानका नया प्रभात हमें कितना चमकीला, कितना लुभावना और कितना अलौकिक मालूम होता है ?

"ओ हमारी अनोखी आशाके प्रतीक बापू ! आप हमारी खुशीसे धीरज रखिए, हिम्मत बांधिए और दृढ़ बनिए। हम आपको सिर्फ अपना आध्यात्मिक नेता ही नहीं मानते, बल्कि ऐसे आदमीका जीता-जागता उदाहरण समझते हैं, जिसने समतोल या प्रसन्नता खोए बिना रोजाना जिंदगीमें अपने विश्वासपर पूरी तरह अमल किया है। क्या आपने ही हमें अपने धर्मका यह कीमती संदेश नहीं दिया है कि फलकी आशा रखे बिना पूरे दिलसे अपना काम करो और बाकी सब भगवानके भरोसे छोड़ दो ? आपने जो कुछ किया, अपनी पूरी श्रद्धा और हिम्मतके साथ किया। अब भगवान हमें यह दिखाता है कि अहिंसासे, जो अनोखी आशाकी जननी और हमारी सभ्यताको बरबादीसे बचानेका एकमात्र साधन है, क्या-क्या हासिल किया जा सकता है। शायद आपकी दलील यह है कि हिंदुस्तानकी आजादीकी लड़ाईमें जिस अहिंसाका उपयोग किया गया, वह हमेशा पूर्ण नहीं थी; लेकिन इतना तो मुझे पक्का विश्वास है कि आपसे प्रेरणा पाए हुए आपके भले लोगोंने इसके लिए ईमानदारीसे कोशिश जरूर की।

"हम आशा रखें कि हम आपके इस संदेशके लायक साबित होंगे और अपने यहां उसका पूरा-पूरा उपयोग करेंगे।

"यह सच है कि यहांके बहुत थोड़े लोग उसके सच्चे अर्थको समझते हैं, लेकिन उसके लिए वातावरण यहां तैयार है।

"हम दिलमें हिम्मत रखकर और भगवानमें भरोसा रखकर काम करें!

"२७ जुलाई, १९४७के 'हरिजन' में छपा आपका लेख, जिसका मैंने इस खतके शुरूमें जिक्र किया है, एडमंडद्वारा किया तरजुमा अगले 'एसोर'में छापा जा रहा है। (सच पूछा जाय तो यह पूरा अंक ही हिंदुस्तानके बारेमें है।)

"मुझे खुशी है कि 'एसोर'के पाठकोंको एक बार फिर आपका वह दृष्टिकोण जाननेको मिलेगा, जिसपर आपने जोर दिया है। एक बार फिर उनका ध्यान मंद विरोध और अहिंसाके बुनियादी भेदकी तरफ तत्परतासे खिंचेगा।

"इसके बारेमें मैं जितना सोचती हूं, उतना ही मेरा यह पक्का विश्वास होता जाता है कि लोग इस भेदको नहीं समझते—नहीं समझ सकते। वे मंद विरोधका इस्तेमाल करते हैं, पर कामयाबी न मिलनेपर निराश हो जाते हैं, हालांकि वे अपनी कोशिशमें पूरे ईमानदार रहते होंगे।

"अक्सर हकीकत यह होती है कि लोग अनजानमें अपने आपसे झूठ बोलते हैं।

"इसलिए पिछले कुछ दिनोंसे मैं मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकी थोड़ी जानकारी पानेकी कोशिश कर रही हूं। पहले लोग कहा करते थे कि शैतान हमारे दिलमें बैठकर हमें बुरे रास्ते ले जानेका जो खेल खेला करता

हैं, उससे हमें सावधान रहना चाहिए।

"आजकल लोग सचाईतक पहुंचनेके लिए ज्यादा वैज्ञानिक तरीके चाहते हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकी विद्या दिमागी बीमारियोंके रोगियोको अच्छा करनेका उपाय तो है ही। साथ ही, वह मामूली लोगोको मानसिक उलझनोको भी दूर करनेमें मददगार हो सकती है। इस तरह लोग ज्यादा जाग्रत बनते हैं और यह जागृति, ईमानदारीसे कोशिश करनेपर उन्हें अहिंसाका सच्चा उपयोग करने लायक बनाती है।"

मैं देखता हूं कि आप मद विरोध और अहिंसक विरोधका बुनियादी फर्क समझ गई हैं। विरोध दोनो ही रूपोमे है, मगर जब आपका विरोध मंद विरोध होता है तब विरोध करनेवालेकी कमजोरीके अर्थमे आपको उसकी बहुत बडी कीमत चुकानी पड़ती है। यूरोपने नाजारेथके ईशुके बहादुरी, हिम्मत और पूरी बुद्धिमानीसे किए हुए विरोधको मंद विरोध समझनेकी गलती की, जैसे वह किसी कमजोरका विरोध हो। जब मैंने पहली बार न्यू टेस्टामेंट पढ़ी तभी चार गॉस्पेलोमे बयान किए गए ईशुके चरित्रके बारेमे कोई निष्क्रियता, कोई कमजोरी मुझे नहीं मालूम पड़ी। और जब मैंने टॉल्सटॉयकी 'हार्मनी ऑव दी गॉस्पेल्स' नामकी किताब और उनकी इस विषयसे सबंध रखनेवाली दूसरी किताबे पढी तब उसका मतलब और ज्यादा साफ हो गया। क्या ईशुको मद विरोध करनेवाला समझनेकी गलती करनेके लिए पश्चिमको बहुत बड़ी कीमत नही चुकानी पड़ी है? सारे ईसाई देश उन महायुद्धोके लिए जिम्मेदार रहे है, जिन्होंने ओल्ड टेस्टामेटमे बयान किए गए और दूसरे ऐतिहासिक और अर्धऐतिहासिक महान् रेकार्डोपर

धब्बा लगाया है। मैं जानता हूं कि मेरी बातमें कुछ गलती हो सकती है, क्योंकि नए और पुराने दोनों तरहके इतिहासकी मेरी जानकारी बहुत थोड़ी है।

अपने निजी अनुभवके बारेमें मैं कहूंगा कि बेशक हमको मंद विरोधके जरिए राजनैतिक आजादी मिली, जिसपर आप और आपके पति जैसे पश्चिमके शांतिपसंद लोग इतने उत्साहित हैं। मगर हमने, या कहिए कि मैंने मंद विरोधको अहिंसक विरोध मान लेनेकी जो भयंकर भूल की, उसकी भारी कीमत हम रोजाना चुका रहे हैं। अगर मैंने यह गलती न की होती तो हमें एक कमजोर भाईके हाथों दूसरे कमजोर भाईके बिना सोचे-बिचारे वहशियाना ढंगसे मारे जानेका शर्मनाक दृश्य न देखना पड़ता।

मैं सिर्फ यही उम्मीद और प्रार्थना करता हूं और यहांके व दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें रहनेवाले दोस्तोंसे चाहता हूं कि वे भी मेरे साथ यह उम्मीद और प्रार्थना करें कि यह खूनकी होली जल्द खतम होगी और उसमेंसे—शायद अनिवार्य खून-खराबीमेंसे—निकलकर एक नया और मजबूत हिंदुस्तान ऊपर उठेगा। वह पश्चिमकी सारी भयंकरताओंकी नीचतासे नकल करनेवाला लड़ाई-पसंद हिंदुस्तान नहीं होगा। वह पश्चिमकी सारी अच्छी बातोंको सीखनेवाला और एशिया व अफ्रीका ही नहीं, बल्कि सारी दुःखी दुनियाका आशाकेंद्र बननेवाला हिंदुस्तान होगा।

मुझे मानना चाहिए कि यह दुराशामात्र है, क्योंकि आज हम फौजमें और जिस्मानी ताकतको व्यक्त करनेवाली सारी

चीजोंमें पक्का विश्वास रखने लगे हैं। हमारे राजनीतिज्ञ अंग्रेजी हुकूमतमें हथियारोंपर किए जानेवाले भारी खर्चके खिलाफ दो पीढ़ियोंतक आवाज उठाते रहे हैं। मगर अब चूंकि राजनैतिक गुलामीसे हमें छुटकारा मिल गया है, हमारा फौजी खर्च बढ़ गया है, और भय है कि वह और ज्यादा बढ़ेगा। और इसपर हमें अभिमान है ! इसके खिलाफ हमारी धारासभाओंमें एक भी आवाज नहीं उठी है। फिर भी मुझे और बहुतसे दूसरे लोगोंको उम्मीद है कि इस पागलपन और पश्चिमके भड़कीलेपनकी झूठी नकल करनेके बावजूद हिंदुस्तान इस मौतके मुंहसे बच जायगा और सन् १९१५ से लगातार ३२ सालतक अहिंसाकी तालीम लेनेके बाद उसे जिस नैतिक ऊंचाईपर पहुंचना चाहिए, वहां पहुंच जायगा।

नई दिल्ली, २९–११–'४७

: ६२ :

मालिककी बराबरी किस तरह करोगे ?

मजदूर-दिनके लिए आपने मेरा संदेश मांगा है। मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। मजदूरोंने अगर अहिंसाका पाठ पूरी तरहसे समझा हो तो उनमें हिंदू-मुसलमानका भेदभाव नहीं होना चाहिए। हिंदुओंमें छूआछूतकी गंधतक न हो। मजदूरोंमें भेदभाव किस बातका ? मजदूरको अगर मालिककी

बराबरी करनी हो, तो उसे मिलको अपनी मिल्कियत समझकर उसकी सार-संभाल करनी चाहिए। अन्यायका विरोध कैसे किया जाय, यह बात तो अहमदावादके मजदूर सीख गए हैं। मगर वे मालिकके साथ मिलोंके साझीदार बने, उससे पहले उन्हें दूसरे बहुतसे पाठ सीखने हैं। क्या यह बात वे जानते हैं? वे याद करें और आगे बढ़ें।[1]

नई दिल्ली, २९-११-'४७

: ६३ :

संकटका समझदारीभरा उपयोग

"आप शरणार्थियोंके बारेमें उतना ही जानते हैं, जितना दूसरा कोई जानता है। उनके दुःख-दर्दकी कहानियां दिलको तोड़ देनेवाली हैं। कुछ ही हफ्तों पहले वे लोग खुशहाल थे, लेकिन आज कंगाल हो गए हैं। डॉक्टरीका धंधा करनेवाले लोग अपने साथ उस धंधेका कोई सामान पाकिस्तानसे नहीं ला सके हैं। चीर-फाड़ वगैराके औजार और डाक्टरीकी किताबें भी उनसे छीन ली गई हैं। निजी माल-असबाब और पैसा-टका सब वहीं छोड़ना पड़ा। वे सच्चे मानोंमें गरीब, निराश्रित और बेरोजगार हो गए हैं। वे नहीं जानते कि वे क्या करें।

"आपने प्रार्थनाके बादके अपने भाषणोंमें हमेशा यह कहा है कि आजके

---

[1] 'मजदूर-दिन' के बारेमें गांधीजीका अहमदाबादके मजूर-महाजनको श्रीअनसूयाबहनके मार्फत भेजा गया संदेश।

संकटका समय हमारी कसौटीका समय है। उसमें हमारा जीतना या हारना अपने आपपर निर्भर करता है। हालांकि हमारी पूरी हमदर्दी शरणार्थियोंके साथ है, फिर भी यह कबूल करना पड़ेगा कि उनमें सूझ-बूझकी कुछ कमी है। वे खुद अपनी रोजी कमानेका कोई उपाय नहीं खोजते। इससे उनकी तकलीफें और ज्यादा बढ गई हैं। ज्यादातर डॉक्टरों और वैद्योंकी—जो पाकिस्तानके अलग-अलग शहरोंमें अपनी खूब पैसा देनेवाली प्रैक्टिस छोड़कर यूनियनमें आए हैं—सिर्फ एक ही मांग है कि उन्हें दिल्लीकी किसी अच्छी बस्तीमें दूकान या मकान दे दिया जाय। जिन मर्दों और औरतोंको वहांसे नौकरी छोड़कर आना पड़ा है, वे चाहते हैं कि केंद्र या सूबेकी कोई सरकार उन्हें फिर नौकरी दे दे। लेकिन आजकी हालतमें ऐसे हजारों लोगोंमेंसे थोड़े ही लोग मनचाही जगह या नौकरी पानेकी उम्मीद रख सकते हैं। अगर सब डॉक्टरों या वैद्योंको मनकी जगह मिल जाय तो भी वे एक ही शहरमें शायद अपनी प्रैक्टिस नहीं जमा सकेंगे। जिन लोगोंको बदकिस्मतीसे दूकान या मकान नहीं मिलते, वे सोचते हैं कि उनके साथ न्याय नहीं किया जाता। मुझे लगता है कि आप अपनी कलमसे इन लोगोंको कोई सलाह दें तो इन्हें सही रास्ता दिखाई देगा।

"आज हमारे देशको हर मैदानमें सेवाकी जरूरत है, खास कर डॉक्टरी धंधेकी हर शाखाके सदस्योंको तो जनताकी सेवामें खो जाना कठिन नहीं मालूम होना चाहिए, बशर्ते कि वे छोटे शहरों या गावोंमें जमनेके लिए तैयार हों। वहां रहकर वे लोगोंको सिर्फ डॉक्टरी मदद ही नहीं दे सकेंगे, बल्कि लोगोंको बीमारियोंसे बचनेके लिए सफाई और नियमसे रहना भी सिखा सकेंगे। अगर हमारी सरकारें ग्राम-सुधारके कार्यक्रमों-को सचमुच अमलमें लाना चाहती हैं तो मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि सारे डॉक्टर, सर्जन, नर्स और शिक्षक सीधे सरकारी नौकरीमें

क्यों नहीं लिए जा सकते। किसी सब-डिवीजन या गांवमें जम जानेसे भी एक अरसेके बाद खानगी प्रैक्टिसमें जरूरतसे ज्यादा पैसे मिलने चाहिए। हां, ऐसे हर मर्द या औरतको शहरी जीवनके सुख-सुभीते छोड़नेके लिए तैयार रहना चाहिए। शायद इनसे उन्हें हमेशा फायदा भी नहीं हुआ है। अगर वे चतुर, ईमानदार और हमदर्द हों तो राजपर आजकी तरह बोझ बननेके बजाय निश्चित रूपसे उसे फायदा पहुंचा सकते हैं। तब हमारा आजका संकट वरदान बन जायगा।"

यह खत एक ऐसे व्यक्तिने लिखा है, जो इस संकटके बारेमे सब कुछ जानता है। इसमे जरा भी शक नही कि अगर इस भयानक मुसीवतके शिकार बने लोग और जनता—जिसके बीच उन्हे कुछ समयके लिए रहना पड़ रहा है—सही बरताव करें तो यह संकट वरदान बन सकता है। मुझे कोई शक नहीं कि इस संकटमे डॉक्टरों, वकीलों, वैद्यों, हाकिमो, नर्सों, व्यापारियों और बैंकरों जैसे खास तालीम पाए हुए सब लोगोंको दूसरोंके साथ सुख-दुःख उठाकर पूरे सहकारसे छावनी-का एक-सा जीवन विताना चाहिए। उन्हें अपनेको दानपर जीनेवाले लाचार स्त्री-पुरुष नही, वल्कि होशियार सूझ-बूझ-वाले और आजाद स्त्री-पुरुष महसूस करना चाहिए, अपने दु.खोंकी ज्यादा परवाह नही करनी चाहिए और खुश रहकर ऐसे जीवनकी आशा करनी चाहिए जो उनके दुःखोंसे ज्यादा समृद्ध और ऊंचा बना है, जिसका भविष्य उजला और शान-दार है और जो उन लोगोद्वारा नकल करने लायक है जिनके वीच छावनीका जीवन विताया जाता है।

जब डॉक्टर, नर्स, वकील, व्यापारी वगैरह लोग निःस्वार्थ

और मिली-जुली सामाजिक जिंदगीके आदी हो जायंगे और जब वे इन छावनियोमेंसे बाहर भेजे जा सकेंगे तब वे गांवोमे या शहरोंमे फैल जायगे और जहां कही रहेंगे वहा अपने जीवनकी खुशबू फैलाएंगे।

नई दिल्ली, ३०–११–'४७

: ६४ :

अहिंसाकी मर्यादा

एक सज्जनने मुझे खत लिखा है। उसका सार इस तरह है.

"व्यक्तिगत अहिंसा समझी जा सकती है। दोस्तोके बीचकी समाजी अहिंसा भी समझमें आ सकती है; लेकिन आप तो कहते हैं कि दुश्मनोके सामने भी अहिंसाका इस्तेमाल किया जा सकता है। यह तो आकाशके फूल-सी असंभव बात मालूम होती है। मेहरबानी करके आप यह हठ छोड़ दें तो अच्छा हो। अगर आप अपनी हठ नहीं छोड़ेंगे तो आजतककी कमाई हुई आबरू खो देंगे। आप महात्मा माने जाते हैं, इसलिए समाजके बहुतसे लोग आपके रास्ते चलकर बहुत दुःखी और पामाल हो रहे हैं और आगे भी होंगे। इससे समाजको नुकसान हो रहा है।"

जिस अहिंसाकी हद एक व्यक्तितक है, वह समाजके कामकी नही। मनुष्य समाजी जीव है, इसलिए उसकी शक्तिया

ऐसी होनी चाहिए कि समाजके सब लोग कोशिशसे उन्हें अपनेमें बढ़ा सकें। दोस्तोंके बीच ही जो सीखा और बढाया जा सके, वह गुण विनय या नम्रता है। उसमें अहिंसाका थोडा अंश है; लेकिन वह अहिंसाके नामसे पहचाना जाने लायक नहीं है। अहिंसाके सामने वैरका त्याग होना ही चाहिए, यह महावाक्य है। यानी जहां वैर अपनी आखिरी हदतक पहुंच चुका हो, वहां इस्तेमाल की जानेवाली अहिंसा भी ऊंची-से-ऊंची चोटीतक पहुंची हुई होनी चाहिए। यह अहिंसा सीखनेमें बहुत समय लगेगा। संभव है, पूरी जिंदगी खतम हो जाय, लेकिन इससे वह निरर्थक या बेकार नहीं हो जाती। इस अहिंसाके रास्ते चलते-चलते कई अनुभव होंगे। वे सब दिनो-दिन ज्यादा भव्य और प्रभावशाली होंगे। अहिंसाकी आखिरी चोटीपर पहुंचनेपर उसकी सुंदरता कैसी होगी, इसकी झांकी यात्रीको रोज-रोज देखनेको मिलती रहेगी और उसकी खुशी व उत्साह बढेगा। इसका मतलब यह नहीं लगाया जा सकता कि मुसाफिरको रास्तेमें दिखाई देनेवाले सारे दृश्य मीठे और लुभावने मालूम होंगे। अहिंसाका रास्ता गुलाबके फूलोंकी सेज नहीं, वह कांटोंका रास्ता है। प्रीतम कविने गाया है कि 'हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जो ने।'

इस समयका वातावरण इतना जहरीला बन गया है कि हम सयाने और अनुभवी लोगोंके वचन याद रखनेसे इन्कार करते हैं। रोज-रोज होनेवाले छोटे-मोटे अनुभवोंको भी नही देख सकते।' बुराईका बदला भलाईसे चुकाना चाहिए, यह बात सबके मुंहपर होती है। इसका रोज-रोज अनुभव भी

होता है। फिर भी हम यह क्यो नही देख सकते कि अगर यह दुनिया वैरसे भरी होती तो इसका कभीका अत हो गया होता ? आखिरमे दुनियामें प्रेम ही वढता है। उसमे दुनिया टिकी है और टिकती है।

इतनी वात सच है कि अहिंसाकी तालीम लेनी होती है और उसे वढ़ाना पडता है। उसकी गति ऊपरको होती है, इसलिए उसकी ऊची-से-ऊंची चोटीतक पहुंचनेमे वड़ी मेहनत करनी पड़ती है। नीचे उतरनेमे मेहनत नही पडती। हम सव इस वारेमे अशिक्षित है। इसलिए जीवनमे मारकाट, गाली-गलौज ही हमारा स्वाभाविक अनुभव होता है।

अहिंसा अनुभवसे मंजे हुए आदमीको ही चुनती है।

नई दिल्ली, ८-१२-'४७

: ६५ :

दुःखीका धर्म

सिंधमे जीना वहुत भारी मालूम होनेसे सिंध छोडकर आए हुए एक सिंधी भाई लिखते है :

"इस वड़ी मुसीवतके वक्त जव पश्चिमी पाकिस्तानसे हमारे हजारो भाई-वहन अपने पुश्तैनी घरवार छोड़कर इस हिस्सेमें आ रहे है तव दुःखकी वात यह है कि कई हिंदू संकुचित प्रांतीयता जतला रहे है। आपद्धर्म समझकर जो लोग वेहद दुःखकी वजहसे भाग निकले है उनकी तरफ सवको कम-से-कम मामूली दया तो जतलानी ही चाहिए। आपने हमको

दु:खी माना है, यह यथार्थ है। हममेंसे भी कई लोग अपने आपको शरणार्थी ही मानते हैं।

"दुखियोंकी तादाद इतनी अधिक हो गई है कि कोई भी सरकार, जनताकी पूरी-पूरी मददके बिना इनके सवालको हल नहीं कर सकती। ऐसे वक्त कई मकान-मालिक अपने मकानोका सिर्फ किराया ही नहीं बढ़ा रहे है, बल्कि मकान किराएसे देनेकी मेहरबानीके बदलेमें 'पगड़ी' भी मांगते है। ऐसी बुराइयोके खिलाफ क्या आप अपनी आवाज नहीं उठाएंगे?"

इस खतके लेखकके साथ मेरी सहानुभूति है, मगर उनके विश्लेषणका मै समर्थन नही कर सकता। फिर भी इतना कबूल करता हूं कि ऐसे मकान-मालिक पड़े हैं, जो दुखियोंके दु:ख जानते हुए भी उन्हे चूस लेनेवाला किराया लेते शरमाते नहीं हैं। यह कबूल करनेके साथ ही यह कहना जरूरी है कि ऐसे मालिक भी पडे है, जो अपनी शक्तिभर दुखियोंके लिए सहूलियतें पैदा करते है, फिर ये सहूलियते लेखक या मै चाहूं, उतनी और वैसी भले ही न हों। मगर उसे कैसे भुलाया जा सकता है कि वे लोग दुखियोंकी सहूलियतके लिए खुद अड़चन भी उठाते है? अपने ऊपरका बोझ कम करनेका अच्छे-से-अच्छा तरीका यह है कि दु:खी लोग अपने ऊपर अचानक आ पड़े इस दु:खमेंसे सुख लेना सीख जायं। उन्हें नम्रताका पाठ सीखना चाहिए—ऐसी नम्रता, जिससे वे दूसरोंके दोष देखने और उनकी टीका करनेके बदले अपने दोष देख सके। उनकी टीका कई बार बहुत कड़ी होती है, कई बार अनुचित होती है और कभी-कभी ही उचित होती है। अपने दोष देखनेसे इन्सान

ऊपर उठता है, दूसरोंके दोष निकालनेसे नीचे गिरता है। इसके सिवा दुखी लोगोंको सहयोग जीवनकी कला और उसमें रहनेवाले गुणोंको समझ लेना चाहिए। यह सीखते हुए वे देखेंगे कि सहयोगका घेरा बडा होता जाता है, जिससे उसमें सारे इन्सान समा जाते हैं। अगर दुखी लोग इतना करना सीख जायं तो उनमेंसे कोई अपने आपको अकेला न माने। तब, सभी, चाहे वे किसी प्रांतके हो, अपनेको एक मानेंगे और सुख खोजनेके बदले मनुष्यमात्रके कल्याणमे ही अपना कल्याण देखेंगे। इसका मतलब कोई यह न करे कि आखिरमे सबको एक ही जगह रहना होगा। यह हमेशा असभव ही रहेगा और जब लाखोंका सवाल है तब तो बिलकुल ही असंभव है। मगर इसका मतलब इतना जरूर है कि हरएक अपनेको समुद्रमें एक बूंदके समान समझकर दूसरेके साथ सबंध रखे, फिर भले ही दु:ख आ पड़नेसे पहले सबके दरजे अलग-अलग रहे हो—किसी-का नीचा रहा हो, किसीका ऊचा, और सभी अलग-अलग प्रातोके हों, और फिर कोई ऐसा तो कह ही नही सकता कि मुझे तो फलां जगहपर ही रहना है। तब किसीको न तो अपने दिलमे कोई शिकायत रहेगी और न कोई प्रकट रूपसे शिकायत करेगा। तब मुसलमानोंके घर चाहे खाली हो, चाहे भरे हुए, मगर कोई उनपर अपनी मैली नजर नही डालेगा। ऐसे खाली मकानोका क्या किया जाय, इसका फैसला करनेका काम सरकारका है। दुखियोंको एक ही फिकर करनी है कि उन सबको साथ रहना है और बहुतसे होते हुए भी ऐसे बरतना है, मानों सब एक ही हों। अगर ऊपर बतलाए हुए विचारोपर अमल होगा और

वह फैलेगा तो दुखियों या शरणार्थियोंको रखनेका सवाल बिलकुल हल्का हो जायगा और उनके बारेमें जो डर है, वह दूर हो जायगा।

ऐसी अच्छी व्यवस्थामें वे अपंग या लाचार बनकर नही रहेंगे। ऐसे सभी दुखी, उनको दिया गया काम करेंगे और सभीके खाने, पहनने और रहनेका अच्छा इंतजाम हो जायगा। ऐसा करनेसे वे स्वावलंबी बनेंगे। औरत-मर्द सभी एक दूसरेको बराबर मानेंगे। कई काम तो सभी करेंगे, जैसे कि पाखाने साफ करना, कूडा-करकट निकालना वगैरह। किसी कामको ऊंचा और किसीको नीचा नही माना जायगा। ऐसे समाजमें कोई आवारा, आलसी या निकम्मा नही रहेगा। ऐसी जिंदगी शहरी जिंदगीसे बहुत ऊंची मानी जायगी। शहरी जीवनमें एक तरफ महल और दूसरी तरफ गंदे झोंपड़े होते है, इन दोनोंमेंसे कौन-सा ज्यादा घृणा पैदा करता है, यह कहना मुश्किल है।

नई दिल्ली, ९-१२-'४७

: ६६ :

मेव लोग क्या करें ?

आज मेरी बातका प्रभाव नही रहा, जो पहले था। एक जमाना था जब मेरी हर बातपर अमल किया जाता था। अगर मेरे कहनेमे पहलेकी ताकत और प्रभाव होता तो आज

एक भी मुसलमानको हिंदुस्तानी संघ छोडकर पाकिस्तान जानेकी जरूरत न पडती, न किसी हिंदू या सिक्खको पाकिस्तान-मे अपना घरवार छोडकर हिंदुस्तानी संघमे आसरा खोजनेकी जरूरत होती। हिंदुस्तान या पाकिस्तानमे जो कुछ हुआ—भयानक खूरेंजी, आग, लूटपाट, औरतोको भगाना, जवरदस्ती लोगोंका धर्म-परिवर्तन करना और इससे भी बुरी जो वातें हमने देखी है—वह सव मेरी रायमें वहुत वडा जगलीपन है। यह सच है कि पहले भी ऐसी वातें हुई है, लेकिन तव इतने वड़े पैमानेपर सांप्रदायिक फर्क नही पैदा हुआ था। ऐसी वर्वरता-भरी घटनाओंकी कहानियोंसे मेरा दिल रंजसे भर जाता है और सिर शर्मसे गड जाता है। इससे भी ज्यादा शर्मनाक वात मदिरो, मसजिदो और गुरुद्वारोंको तोडने और विगाडने-की है। अगर इस तरहके पागलपनको रोका नही गया तो वह दोनों जातियोंका सर्वनाश कर देगा। जवतक देशमे इस तरहके पागलपनका राज है तवतक हम आजादीसे कोसों दूर रहेंगे।

लेकिन इसका इलाज क्या है? सगीनोंकी ताकतमे मेरा विश्वास नही है। मै तो इसके इलाजके रूपमे आपको अहिंसाका हथियार ही दे सकता हूं। वह हर तरहके सकटका सामना कर सकता है और अजेय है। हिंदू धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म वगैरह सारे वड़े धर्मोमें अहिंसाकी वही सीख भरी है, लेकिन आज धर्मके पुजारियोंने उसे सिर्फ किताबी उसूल वना रखा है, व्यवहारमे वे सव जंगलके कानूनको ही मानत हैं। सभव है, आज मेरी आवाज अरण्यरोदन-जैसी सावित हो, लेकिन मै तो आपको अहिंसाके संदेशके सिवा दूसरा कोई मदेश

नही दे सकता । मैं तो यही कहूंगा कि जंगली ताकतकी चुनौतीका मुकाबला आत्माकी ताकतसे ही किया जा सकता है ।

मेवोके प्रतिनिधिने मुझे यह दरखास्त पढ सुनाई, जिसमे उनकी सारी शिकायते दी गई है और उन्हे दूर करनेकी प्रार्थना की गई है । मैंने वह खत आपके प्रधानमंत्री डॉ० गोपीचदके हाथमे रख दिया है । खतमे दी हुई बहुत-सी बातोके बारेमे वह क्या करना चाहते है, यह तो वह खुद आपको बताएगे । मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूं कि अगर किसी सरकारी अफसरने बुरा काम किया होगा तो मुझे यकीन है कि सरकार उसके खिलाफ उचित कदम उठानेमे और उसे नसीहत देनेमे नही हिचकिचाएगी । किसी एक आदमीको सरकारकी सत्ता हड़पने नही दी जा सकती, न वह यह आशा कर सकता है कि उसके कहनेसे सरकारी अफसरोको एक जगहसे दूसरी जगह बदल दिया जाय । मैं यह भी अच्छी तरह जानता हूं कि अपनी मरजी या राजी-खुशीकी दलीलपर किसीके धर्म-परिवर्तन या किसी औरतकी दूसरी जातिके मर्दके साथकी शादीको सही व कानूनी करार नही दिया जा सकता । जब चारो तरफ डरका राज फैला हो तब 'राजी-खुशी' या 'अपनी मरजी'की बात करना इन शब्दोंके साथ अन्याय करना है ।

अगर आपके दु.खमे मेरे इन शब्दोसे आपको थोड़ा ढाढस बंधे तो मुझे खुशी होगी । जिन मेवोंको अलवर और भरतपुरसे निकाला गया है, उनके साथ मेरी पूरी हमदर्दी है । मैं उस दिनकी आशा लगाए बैठा हूं, जब सारे वैर भुला दिए जायंगे, सारी नफरत दफना दी जायगी

जिन्हे अपने घरोसे निकाला गया है वे सब अपने-अपने घर लौटेंगे तथा पूरी शाति और सलामतीके वातावरणमे पहलेकी तरह अपने धधे चालू करेगे। तब मेरा दिल खुशीसे नाचने लगेगा। जबतक मै जिदा रहूगा तबतक यह आशा नही छोडूगा; लेकिन मै कबूल करता हू कि आजकी हालतोमे यह नही हो सकता। मुझे इस बातका भरोसा है कि हमारी यूनियन सरकार इस बारेमे अपना फर्ज अदा करनेमे ढिलाई नही दिखाएगी और रियासतोको यूनियन सरकारकी सलाह माननी पड़ेगी। यूनियनमे शामिल हो जानेसे रियासतोके शासकोको अपनी प्रजाको दबाने और कुचलनेकी आजादी नही मिल जाती। अगर राजाओको अपना दरजा कायम रखना है तो उन्हे अपनी प्रजाके ट्रस्टी और सच्चे सेवक बनना होगा।

अतमे मै मेव भाइयोसे एक बात कहना चाहता हू। मुझसे यह कहा गया है कि मेव लोग करीब-करीब जरायमपेशा जातियो-की तरह है। अगर यह बात सही हो तो आप लोगोको अपने आपको सुधारनेकी पूरी कोशिश करनी चाहिए। अपने सुधारका काम आपको दूसरोपर नही छोडना चाहिए। मुझे आशा है कि आप लोग मेरी इस सलाहपर नाराज नही होगे। जिस अच्छी भावनासे मैने आपको यह सलाह दी है, उसे आप उसी भावनासे ग्रहण करेगे। यूनियनकी सरकारसे मै यह कहूगा कि अगर मेवोके बारेमे यह इलजाम सही हो तो भी, इस दलीलपर उन्हे निकालकर पाकिस्तान नही भेजा जा सकता। मेव लोग हिदुस्तानी सघकी प्रजा है। इसलिए उसका यह फर्ज है कि

वह मेवोको शिक्षाके सुभीते देकर और उनके बसनेके लिए बस्तियां बनाकर अपने आपको सुधारनेमें उनकी मदद करे।[1]

९-१२-'४७

: ६७ :

गहरी जड़ें

एक भाई लिखते हैं

"आजादी मिल जानेके बाद भी शहरके लोगोपरसे अंग्रेजी भाषाका असर कम हुआ दिखाई नहीं देता। बंबईकी उद्योग-धंधों और खेतीकी नुमाइशकी ही मिसाल लीजिए। जिन्होने नुमाइश खोली, उन्होने भी अंग्रेजीमें ही तकरीर की। दूकानोंके तख्ते अंग्रेजीमें थे। चिट्ठी-पत्री भी ज्यादातर अंग्रेजीमें ही हुई। राशन कार्ड अंग्रेजीमें होते हैं, जिससे अंग्रेजी न पढ़ सकनेवाली आम जनताको बड़ी दिक्कत होती है। हमारे नेता गरीब जनताका बिलकुल ख्याल न करते हुए यही समझते हैं कि उनके खास-खास बयान और ऐलान अंग्रेजीमें ही होने चाहिए।"

यह शिकायत सच्ची लगती है। इसे तुरत दूर करना चाहिए। इस इतने बडे मामलेमे तबतक कोई खासी तबदीली सुधारकी तरफ दिखाई नही देगी जबतक हम अपनी सुस्ती न छोडेगे। यह सुस्ती ही हमारी बदकिस्मती है।

नई दिल्ली, १०-१२-'४७

---

[1] गुड़गांव तहसीलके जसरा नामक गांवकी एक सभामें—जिसमें, ज्यादातर मेव लोग ही थे, दिया गया भाषण।

: ६८ :

मिल जानेका उसूल

कहा जाता है कि दक्षिण यूनियनकी कुछ देशी रियासतोके लोगोंने यह जबरदस्त इच्छा प्रकट की है कि उनके राजघरानोको खतम कर दिया जाय और रियासतोको हिंदुस्तानी संघमे मिला लिया जाय। ब्रिटिश हुकूमतके दिनोंमे ब्रिटिश हिंदुस्तान अलग था और रियासते या रियासती हिंदुस्तान अलग। अब इस नई तजवीजका मतलब यह लिया जाता है कि रियासते उस जमानेके ब्रिटिश हिंदुस्तानमे मिल जायं।

जो समाज अहिंसापर कायम हो, उसमे किसी आदमीको धीरज खोकर दूसरेका नाश नही करना चाहिए; क्योंकि अगर हर बुराई करनेवाला आदमी अपनेको सुधारेगा नही तो खुद अपना नाश जरूर कर लेगा। बुराई कभी अपने पैरोंपर खड़ी रह ही नही सकती। इसीलिए कांग्रेसकी नीति हमेशा देशी राजाओ और उनके राजको सुधारनेकी रही है, उन्हे खतम करनेकी नही। कांग्रेस, राजाओको सदा यही समझाती रही है कि वे अपनी प्रजाके सचमुच ट्रस्टी और सेवक बन जाय। इस नीतिके अनुसार कांग्रेस सरकारने राजाओकी हुकूमतको खतम करने और उनकी रियासतोंको पूरी तरह अपने सूबोंमे मिला लेनेकी तजवीज करनेके बजाय रियासतवालोको यही समझानेकी कोशिश की है कि वे यूनियनसे अपना नाता जोड लें। इसमे कांग्रेस सरकारको बड़े दरजेतक कामयाबी भी मिली है। इसलिए किसी रियासतका पूरी तरह किसी सूबेमे

मिल जाना या बाकी हिंदुस्तानमें लीन हो जाना दो ही सूरतोंमें हो सकता है। एक सूरत तो यह है कि किसी राजाके राजमे अंधेर साफ चमकने लगे और उसका कोई इलाज न रह जाय। ऐसी हालतमे वहांके लोगोंको हक होगा, उनका धर्म भी होगा कि वे पासके सूबोंमे बिलकुल मिल जानेकी कोशिश करें। दूसरी सूरत यह हो सकती है कि राजा और प्रजा दोनों मिलकर इसका फैसला करे। किसी-किसीने यह भी कहा है कि जबतक सब रियासतें या ज्यादातर रियासतें इस तरह अपनेको मिटा देनेको तैयार न हों तबतक किसी अकेली रियासत या वहांके लोगोंको---चाहे वह बड़ी रियासत हो या छोटी---ऐसा नही करना चाहिए। लेकिन मेरा यह खयाल नहीं है। यह नही हो सकता कि जबतक दूसरी रियासतोंमे भी वैसा ही अंधेर शुरू न हो जाय तबतक किसी एक रियासतका अंधेर चलता ही रहे और खतम न किया जा सके। इसी तरह अगर कोई राजा खुद अपने राजके अधिकारको खतम करना चाहे तो उसे जबरदस्ती यह नही कहा जा सकता कि जब-तक और सब इसके लिए तैयार न हो जायं तबतक तुम भी रुके रहो। आखिर तो हिंद सरकार हर रियासतके मामलेको अलग-अलग, जरूरत या हालतके मुताबिक, तय करेगी।

नई दिल्ली, १३-१२-'४७

: ६६ :

अब भी कातें !

एक भाईने मुझे लिखा है .

"मैं और मेरे घरके लोग बराबर चरखा कातते रहे हैं और खादी पहनते रहे हैं। अब आजादी मिल जानेके बाद भी क्या आप इसपर जोर देते हैं कि हम चरखा कातते रहें और खादी पहनते रहें ?"

यह एक अजीब सवाल है; पर बहुतसे लोगोकी यही हालत है। इससे साफ जाहिर होता है कि इस तरहके लोगोने चरखा कातना और खादी पहनना इसलिए शुरू किया था कि उनके खयालमें यह आजादी हासिल करनेका एक जरिया था। उनका दिल चरखे या खादीमे नही था। यह भाई भूल जाते है कि आजादीका मतलब सिर्फ विदेशियोके बोझका हमारे कंधोपरसे हट जाना ही नही था। यह और बात है कि आजादीके लिए सबसे पहले इस बोझका हटना जरूरी था। खादीका मतलब है ऐसा रहन-सहन, जिसकी नीव अहिंसापर हो। यही मतलब खादीका, आजादीके पहले था, यही आज भी है। ठीक हो या गलत, मेरी यही राय है कि खादी और अहिंसाके करीब-करीब लोप हो जानेसे यह साबित होता है कि इन तमाम बरसोंमे हम खादीके असली और सबसे बडे मतलबको कभी नही समझ पाए। इसलिए आज हमे जगह-जगह अराजकता और भाई-भाईकी लडाई देखनी पड रही है। मुझे इसमे जरा भी शक नही कि अगर हमें वह आजादी हासिल करनी है, जिसे हिंदुस्तानके करोडों गांववाले अपने

आप समझने और महसूस करने लगे तो चरखा कातना और खादी पहनना आज पहलेसे भी ज्यादा जरूरी है। वही इस धरतीपर ईश्वरका राज्य या रामराज्य कहा जायगा। खादी-के जरिए हम यह कोशिश कर रहे थे कि बिजली या भापसे चलनेवाली मशीनके, आदमीपर चढ बैठनेके बजाय, आदमी मशीनके ऊपर रहे। खादीके जरिए हम कोशिश कर रहे थे कि आज आदमी-आदमीके बीच जो गरीब-अमीर और छोटे-बड़ेका जबरदस्त फर्क दिखाई दे रहा है, उसकी जगह आदमी-आदमीमे और सब मर्दो व औरतोमे बराबरी कायम हो। हम यह कोशिश कर रहे थे कि बजाय इसके कि पूंजीपति मजदूरोपर हावी होकर रहे और उनपर बेजा शान जमावे, मजदूर पूजीपतियोंपर हावी बनकर रहे। इसलिए पिछले तीस बरसोंमे हमने हिंदुस्तानमे जो कुछ किया, वह अगर उलटी चाल नही थी तो हमे पहलेसे भी ज्यादा जोरोसे और कहीं ज्यादा समझके साथ चरखेकी कताई और उसके साथके सब कामोको जारी रखना चाहिए।

नई दिल्ली, १३–१२–'४७

: ७० :

प्रांतीय गवर्नर कौन हो ?

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते है .

"एक सवाल है, जो मेरे ख्यालसे महत्वका है और जिसके बारेमें

में आपकी राय जानना चाहता हूं। हिंदका जो नया विधान बनाया जा रहा है उसमें प्रांतोके गवर्नर चुननेके नियम रखे गए हैं। प्रांतका गवर्नर उस सूबेके सभी बालिगोंके मतसे चुना जायगा। इसलिए यह साफ जाहिर है कि जिसे कांग्रेसका पार्लामेंटरी बोर्ड चुनेगा, उसे ही आम तौरसे प्रांतकी जनता गवर्नर चुन लेगी। प्रांतका प्रधान मंत्री भी कांग्रेस पार्टीका ही होगा। प्रांतका गवर्नर ऐसा ही होना चाहिए, जो उस सूबेकी पार्टीबंदीसे अलग रहे; लेकिन अगर प्रांतका गवर्नर आम तौरसे कांग्रेसी होगा और उसी प्रांतका होगा तो वह कांग्रेसदलकी पार्टीबंदियोंसे अलग नहीं रह सकेगा। या तो वह कांग्रेस प्रधान मंत्रीके इशारोपर चलेगा या फिर गवर्नर और प्रधानमंत्रीके बीच कुछ-न-कुछ खींचातानी रहेगी।

"मेरे ख्यालसे तो प्रांतोमें अब गवर्नरकी जरूरत ही नहीं है। प्रधानमंत्री ही सब कामकाज चला सकता है। जनताका ५५००) रु० महीना गवर्नरकी तनखाहपर फजूल ही क्यों खर्च किया जाय? फिर भी अगर प्रांतोंमें गवर्नर रखने ही हैं तो वे उसी प्रांतके नहीं होने चाहिए। बालिग मतसे उन्हें चुननेमें भी बेकारका खर्च और परेशानी होगी। यही अच्छा होगा कि यूनियनका अध्यक्ष हर प्रांतमें दूसरे किसी प्रांतके ऐसे इज्जतदार कांग्रेसी सज्जनको भेजे, जो उस प्रातकी पार्टीबंदीसे अलग रहकर वहांके सार्वजनिक और राजनैतिक जीवनको ऊंचा उठा सके। आज जो प्रांतोंके गवर्नर केंद्रीय सरकारने नियुक्त किए हैं, वे करीब-करीब इन्हीं सिद्धांतोंके अनुसार चुने गए हैं, ऐसा लगता है। और इसलिए प्रातोका राजनैतिक जीवन भी ठीक ही चल रहा है। अगर आजाद हिंदके आगेके विधानमें उसी प्रांतका आदमी बालिग मतसे चुननेका कायदा रखा गया तो, मुझे डर है कि प्रातोका राजनैतिक जीवन ऊंचा नहीं रह सकेगा।

ー

"उस विधानमें गांव-पंचायतोका और राजनैतिक सत्ताको छोटी इकाइयोंमें बांट देनेका किसी तरहका जिक्र नहीं किया गया है; लेकिन मेरा उद्देश्य अपने पूज्य नेताओंकी जरा भी टीका करना नहीं है। जो चीज मुझे बहुत खटकती है, उसपर मैं आपकी राय 'हरिजन'में चाहता हूं।"

आचार्यजीने प्रांतीय गवर्नरोके बारेमे जो कहा है, उसके समर्थनमे कहनेको तो बहुत है, लेकिन मुझे कबूल करना होगा कि मैं विधान-परिषद्की सब कार्रवाई नही देख सका हूं। मुझे इतना भी मालूम नही है कि गवर्नरके चुनावकी तजवीज किस तरह पैदा हुई। इसको न जानते हुए भी मुझे आचार्य-जीकी दलील मजबूत लगती है। लोगोकी तिजोरीकी कौड़ी-कौडीको बचाना मुझे बहुत पसंद होते हुए भी प्रधान-मन्त्रीको ही गवर्नर मान लेकर दूसरा कोई गवर्नर न रखनेकी इनकी बात मुझे नही जचती। किफायतके खयालसे प्रांतमेसे गवर्नरको ही उड़ा देना मुझे गलत मालूम होता है गवर्नरोंको रोजानाके कारबारमे दखल देनेका बहुत अधिकार देना ठीक नही है। वैसे ही उनको सिर्फ शोभाका पुतला बना देना भी ठीक नही होगा। वजीरोंके कामको दुरुस्त करनेका अधिकार उन्हे होना चाहिए। सूबेकी खटपटसे अलग होनेके कारण भी वे सूबेका कारबार ठीक तरह देख सकेंगे और वजीरोंको गलतियोंसे बचा सकेंगे। गवर्नर लोग अपने-अपने सूबोंकी नीतिके रक्षक होने चाहिए। आचार्यजी जैसा बताते है, अगर विधानमे गांव-पंचायत और सत्ताको छोटी इकाइयोंमे बांटने (विकेंद्रीकरण)के बारेमें

इशारातक नही है तो यह गलती दूर होनी चाहिए। अगर आम राय ही हमारे लिए सब कुछ है तो पचोंका अधिकार जितना ज्यादा हो, उतना लोगोके लिए अच्छा है। पंचोंकी कारंवाई और असर फायदेमद हो, इसके लिए लोगोंकी सही तालीम बहुत आगे बढनी चाहिए। यह लोगोंकी फौजी ताकतकी बात नही है, बल्कि नैतिक ताकतकी बात है। इसलिए मेरे मनमे तो तालीमसे नई तालीमका ही मतलब है।

नई दिल्ली, १४-१२-'४७

: ७१ :

उपवास क्यों ?

"जब कभी आपके सामने कोई जबरदस्त मुश्किल आ जाती है तो आप उपवास क्यो कर बैठते है ? आपके इस कामका असर हिंदुस्तानकी जनताकी जिदगीपर क्या होता है ?"

इस तरहके सवाल मुझसे पहले भी किये गए है। पर शायद ठीक इन्हीं शब्दोंमे नही। इनका जवाब सीधा है। अहिंसाके पुजारीके पास यही आखिरी हथियार है। जब इन्सानी अक्ल काम नही करती तो अहिंसाका पुजारी उपवास करता है। उपवाससे प्रार्थनाकी तरफ तबियत ज्यादा तेजीसे जाती है। यानी उपवास एक रूहानी चीज है और उसका रुख ईश्वरकी तरफ होता है। इस तरहके कामका

असर जनताकी जिदगीपर यह होता है कि अगर वह उपवास करनेवालेको जानती है तो उसकी सोई हुई अतरात्मा जाग उठती है। इसने एक खतरा जरूर रहता है। संभव है, लोग अपने प्यारेकी जान बचानेके लिए उसके साथ गलत हमदर्दी दिखाकर अपनी मरजीके खिलाफ काम कर ले। इस खतरेका सामना तो करना ही पडता है। आदमीको अगर अपने किसी कामके बारेमें यह यकीन हो जाय कि वह ठीक है तो उसे उस कामके करनेसे नही रुकना चाहिए। इस तरहका उपवास अदरकी आवाजके जवाबमे किया जाता है, इसलिए उसमे जल्दबाजीका डर कम होता है।

नई दिल्ली, १४-१२-'४७

: ७२ :

सत्यसे क्या भय ?

सत्य वचन कठोर लगता हो तब भी उसका परिणाम शुभ ही होता है। सत्य वचन कभी अप्रस्तुत नही हो सकता। जो अप्रस्तुत है वह सत्य नही। गाय किस रास्ते गई, यह बतानेका मेरा शाश्वत धर्म नही। इसलिए बहुत बार यह बताना अप्रस्तुत हो सकता है। हिंदुस्तानमे हिंदुओंद्वारा किए गए अपकृत्योंको डोंडी पीटकर बताना चाहिए। ऐसा करना अप्रस्तुत न होगा। उसे खुले तौरसे स्वीकार कर

लेनेमे ही हिंदूकी रक्षा है। ऐसा करनेसे पाकिस्तानके मुसल-मानोके अपकृत्योकी जल्दी-से-जल्दी समाप्ति हो सकती है। अपनी गलतीको स्वीकार कर लेनेकी प्रवृत्ति मनुष्यको पवित्र करती है, उसे ऊंचा उठाती है। उसे दवा देना शरीरमें जहरको दवाकर उसका नाश कर देनेकी भांति होगा। इस-लिए यह सर्वथा त्याज्य है।

नई दिल्ली, १४-१२-'४७

: ७३ :

मिश्र खाद

खाद दो तरहकी कही जा सकती है। एक तो रासायनिक और दूसरी जीवित। कोई पूछ सकता है कि खाद भी कभी जीवित होती है? इसका अर्थ इतना ही है कि यहांपर जीवित शब्द नए तरीकेसे इस्तेमाल किया गया है। अंग्रेजी शब्द 'ऑरगेनिक' का यह अनुवाद है। जीवित खाद, आदमी और जानवरोंके मल और उसमें घास-पत्ते वगैरह मिलावट या उनके बिना तैयार होती है। वनस्पतिको हम निर्जीव नही मानते। लोहे वगैराको जड़ मानते है। इस तरहके मिश्रणसे बनी हुई खादको अंग्रेजीमें 'कम्पोस्ट' कहते है। मैंने कम्पोस्टकी जगह 'मिश्र' शब्द इस्तेमाल किया है। ऐसी खादको मै सुनहरी खाद मानता हूं। ऐसी खादसे जमीनकी ताकत बनी रहती है। उसका शोपण नही होता, जब कि

कहा जाता है कि रासायनिक खादसे जमीन कमजोर हो जाती है और कुछ समयतक इस्तेमाल करनेके बाद उसे (जमीनको) खाली रखना पड़ता है। जीवित खाद हानिकर जीव पैदा नही होने देती।

ऐसी खादका प्रचार करनेके लिए मीराबहनकी प्रेरणा और उत्साहसे दिल्लीमें इस महीनेमें एक सभा बुलवाई गई थी। उसमें डॉ० राजेंद्रप्रसाद सभापति थे। इस कामके विशारद सरदार दातारसिंह, डॉ० आचार्य वगैरह भी इकट्ठे हुए थे। उन्होंने तीन दिनके विचार-विनिमयके बाद कुछ महत्त्वके प्रस्ताव पास किए है। उनमे यह बताया गया है कि शहरोंमें और सात लाख गांवोंमें इस बारेमे क्या करना चाहिए। शहरोंमें और देहातोंमें मनुष्यके और दूसरे जानवरोंके मलको कूड़े-कचरे, चिथड़े व कारखानोमेसे निकले हुए मैलके साथ मिलानेका सुझाव रखा गया है। इस विभागके लिए एक छोटी-सी उप-समिति बनाई गई है।

अगर यह प्रस्ताव सिर्फ अखबारोंमे छपकर ही न रह जाय और करोड़ों उसपर अमल करे तो हिंदुस्तानकी शक्ल बदल जाय। हमारी बेखबरीसे जो करोड़ों रुपएका खाद बरबाद हो रहा है, वह बच जाय, जमीन उपजाऊ बने और जितनी फसल आज पैदा होती है उससे कई गुनी ज्यादा फसल पैदा होने लगे। परिणाम यह होगा कि भुखमरी बिलकुल दूर हो जायगी, करोड़ोंका पेट भरनेके लिए अन्न मिलेगा और उसके बाद बाहर भी भेजा जा सकेगा।

आज तो जैसी इन्सानकी और जानवरोंकी कंगाल हालत

है वैसी ही फसलकी है। इसमे दोष जमीनका नही, मनुष्यका है। आलस और अज्ञान नामके दो कीड़े हमको खा जाते है। मीराबहनने जो काम उठाया है, वह बहुत बड़ा है। उसमें सैकड़ों मीराबहनें खप सकती है। लोगोमें इस कामके लिए उत्साह होना चाहिए, विभागके लोग जाग्रत होने चाहिए। करोड़ोंके करनेका काम थोड़ेसे सेवक-सेविकाओसे नही हो सकेगा। इसमे तो सेवक-सेविकाओकी फौज चाहिए।

क्या हिंदुस्तानकी ऐसी अच्छी किस्मत है? हिंदुस्तान यानी दोनो हिस्से। अगर दक्षिणका हिस्सा यह काम शुरू कर दे तो उत्तरके हिस्सेद्वारा भी उसे शुरू हुआ ही समझिए।

नई दिल्ली, २१–१२–'४७

: ७४ :

आरोग्यके नियम

श्री ब्रजलाल नेहरू मेरे-जैसे ही खब्ती है। उन्होंने अखबारोमें एक पत्र लिखा है, जिसमे आरोग्य-मंत्री राजकुमारी अमृतकुवरके इस कथनकी तारीफ की है कि हमारी बीमारियां अपने अज्ञान और लापरवाहीमेसे पैदा होती है। उन्होने यह सूचना की है कि आजतक आरोग्य-विभागका ध्यान अस्पताल वगैरह खोलनेपर ही रहा है। उसके बदले राज-

कुमारीने जिस अज्ञानका जिक्र किया है, उसे दूर करनेकी तरफ इस विभागको ध्यान देना चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाया है कि इसके लिए एक नया विभाग खोलना चाहिए। परदेशी हुकूमतकी यह एक बुरी आदत थी कि जो सुधार करना हो, उसके लिए नया विभाग और नया खर्च खड़ा किया जाय। लेकिन इस बुरी आदतकी नकल हम क्यों करें? बीमारियों-का इलाज करनेके लिए अस्पताल भले रहें, लेकिन उनपर इतना जोर क्या देना? घर बैठे आरोग्य कैसे संभाला जा सकता है, इसकी तालीम देना आरोग्य-विभागका पहला काम होना चाहिए। इसलिए आरोग्य-मंत्रीको यह समझना चाहिए कि उसके नीचे जो डाक्टर और नौकर काम करते हैं, उनका पहला फर्ज है जनताके आरोग्यकी रक्षा और उसकी संभाल करना।

श्री ब्रजलाल नेहरूकी एक सूचना ध्यान देने लायक है। वे लिखते है कि बीमारियोके इलाजके बारेमे ढेरों किताबे देखनेमे आती है, लेकिन कुदरती इलाज करनेवालोके सिवा डिग्रीवाले डॉक्टरोंने आरोग्यके नियमोंके बारेमे कोई किताब लिखी हो, ऐसा कभी सुना नही गया। इसलिए श्री नेहरू यह सूचना करते है कि आरोग्य-मंत्री मशहूर डॉक्टरोंसे ऐसी किताब लिखवाएं। यह किताब लोगोंके समझने लायक भाषामें लिखी जाय तो जरूर उपयोगी साबित होगी। शर्त यही है कि ऐसी किताबमें तरह-तरहके टीके लगानेकी बात नही होनी चाहिए। आरोग्यके नियम ऐसे होने चाहिए, जिनका पालन डॉक्टर-वैद्योंकी मददके बिना घर बैठे हो सके। ऐसा

न हो तो कुएंमेंसे निकलकर खाईमें गिरने-जैसी वात होना संभव है।
नई दिल्ली, २१–१२–'४७

: ७५ :

देहातोंमें संग्रहकी जरूरत

श्री वैकुंठभाई लिखते है :

"आजकलकी व्यापार-पद्धतिका परिणाम यह होता है कि देहातोंका अनाज परदेश चला जाता है। देशके बहुतसे हिस्सोंमें गांवोंमें स्थानिक संग्रह नहीं रहता। परिणाम स्वरूप मजदूर वर्गको कष्ट उठाना पड़ता है और चौमासेमें अनाजका भाव खूब बढ़ जाता है। ऐसी हालतमें यह अच्छा होगा कि गरीब प्रजाको बचानेके लिए देहातमें ही पंचके कब्जेमें किसी अच्छे गोदाममें काफी परिमाणमें अन्न इकट्ठा किया जाय और वहींसे जहां भेजना हो भेजा जाय। इस दृष्टिसे चार साल पहले श्री अच्युतराव पटवर्धन और मैंने एक योजना तैयार की थी। श्री कुमारप्पाने जो योजना बनाई है, उसमें भी उन्होंने इस तरहकी व्यवस्थाकी जरूरत स्वीकार की है।

"आजके नए संयोगोंमें आपको ठीक लगे तो आप प्रातीय सरकारोंको और देहाती प्रजाको इस वारेमें कुछ सूचना कर सकते हैं।"

मुझे तो इस सूचनामें वहुत सचाई मालूम होती है। हमारे देशके अर्थशास्त्र या माली व्यवस्थाके लिए ऐसे संग्रहकी जरूरत है। जवसे नकद टैक्स देनेकी प्रथा जारी हुई तवसे

देहातोंमें अन्नका संग्रह कम हो गया है। यहां मै नकद टैक्सके गुण-दोषोमे उतरना नही चाहता, मगर इतना मै मानता हूं कि अगर देहातोंमें अन्न-सग्रह करनेकी प्रथा चालू होती तो आजकी विपदासे शायद हम वच जाते। जव अकुश उठ रहे हैं तब अगर वैकुंठभाईकी सूचनाके अनुसार देहातमे अन्नका संग्रह हो और व्यापारी और देहाती ईमानदार वन जायं तो किसीको कष्ट नही होगा। अगर किसानको और व्यापारीको योग्य नफा मिले तो मजदूर-वर्ग और शहरके दूसरे लोगोंको महंगाईका सामना करना ही न पड़े। मतलव तो यह है कि अगर सबके अनुकूल जीवन बन जाय तो फिर सस्ते और महंगे भावका सवाल उठ जायगा।

नई दिल्ली, २२-१२-'४७

: ७६ :

त्याग और उद्यमका नमूना

भाई दिलखुश दीवानजी अपने ४ दिसंवरके खतमे लिखते हैं :

"आप टेकपर अड़े रहनेवाले कराड़ीके पांचाकाकाको पहचानते ही हैं। २९-११-'४७ की दोपहरको उनके भतीजे वालजीभाई बुनाई-काम करते-करते हृदयकी गति वंद हो जानेसे वुनाई-घरके सामने ही मर गए। वालजीभाई वचपनसे ही अपने काकाके पास रहे थे और उनके टेकभरे जीवनका रंग उनपर भी चढ़ा था।

"१९२३में पाचाकाकाने कराड़ीमें पहलेपहल खड्डी चलाई। थोड़े ही दिनोंमें वालजीभाई जीन कारखानेकी अधिक तनखाहवाली नौकरी छोड़कर कराड़ीमें खड्डी चलाने लगे। जीवनकी आखिरी घड़ी-तक उन्होंने खड्डी नहीं छोड़ी और खड्डीके सामने ही जीवन-लीला समाप्त की। वे बहुत होशियार बुनकर थे। कई युवकोंको उन्होंने बुनाई-काम सिखाया था। वे बहुत शांत प्रकृतिके थे। सबके साथ घुलमिल जाते थे और हमेशा हँसते रहते थे। हमारे खादी-काममें वालजीभाईने बुनाई-कामका विकास करके आखिरतक हमारी बहुत मदद की। ऐसे बुनकरके लिए हमें गर्व था। उनकी मौत भी धन्य है! काकाकी टेक भतीजेमें उतरी।

"काकाकी सत्याग्रही जमीनपर बने हुए हमारे बुनाई-घरके सामने ही वालजीभाईने बुनाईका काम करते-करते देह छोड़ी। उनके श्रमजीवी जीवनमें हमने त्याग, सेवा और उद्यमपरायणताके सुमेलका अनुभव किया।

"उनकी सेवा मूक थी। मगर बुनाई-कामके विकासमें वह जबरदस्त बनती गई। ६–७ नौजवानोंका छोटा-सा समूह उन्हें घेरे रहता था और उनकी देखरेखमें बुनाई-काम सीख गया था। यही उनकी विरासत है।

"पांचाकाकाकी टेक अभी जिंदा है। अपनी जमीनमें हल चलानेको वे अभी 'ना' ही करते हैं। वे पूछते हैं कि 'सच्चा स्वराज अभी आया कहां है? जब प्रजा पुलिसकी मददके बिना रहना सीखेगी तभी मेरी स्वराजकी टेक पूरी होगी। बापू साबरमती आश्रम वापिस कहां गए हैं? बापू साबरमती जायंगे तभी जमीनमें हल चलाऊंगा और महसूल भरूंगा।' अभीतक उन्होंने वह जमीन हमारे कार्यालयको ही दे रखी है।"

स्व० वालजीभाई जैसे सेवक हिंदुस्तानको या जगतको

कम ही मिले है। 'पेड़ जैसा फल और बाप जैसा बेटा'वाली कहावत उनके बारेमें सच साबित हुई है। पांचाकाकाकी टेक तो अद्वितीय ही रहेगी। सच्चा स्वराज कहां मिला है? आज तो वह बहुत दूर लगता है।

वालजीभाई जैसे बुनकर ६-७ ही कैसे? क्या इतनेसे कराड़ीने स्वराज्य लिया कहा जा सकता है?

नई दिल्ली, २२-१२-'४७

: ७७ :

सोमनाथके दरवाजे

पंडित सुंदरलालनें ('हरिजन'के) हिंदुस्तानी सस्करणमे सोमनाथ मंदिरके प्रसिद्ध दरवाजोंके बारेमें एक सुंदर लेख लिखा है। उत्सुक जनोंको मूल लेख अवश्य पढ़ना चाहिए। लेखकने जो खास बात उठाई है वह यह है कि जो दरवाजे गजनी ले जाये गए थे वे, जैसा कि उस वक्त कहा गया था, वापस नहीं लाये गए। जो लाये गए वे वनावटी निकले और जव इस जालका पता चला तब दरवाजोंका आम-प्रदर्शन आगरेसे आगे नहीं किया जा सका। पडित सुंदरलालजीको डर है कि इस प्रसिद्ध मंदिरके जीर्णोद्धारमे भी कही ऐसा ही जाल न किया गया हो!

नई दिल्ली, २२-१२-'४७

: ७८ :

दिल्लीके व्यापारियोंको संदेश

मैं समझता हूं कि जो अकुश अनाजपर लगाया जाता है, वह बुरा है। हिंदुस्तानका हित उसमे हो नही सकता। कपड़ेका अंकुश भी हटना चाहिए। आज जब हमे आजादी मिल गई है तो उसमें हमपर अंकुश क्यों ? जवाहरलालजी, सरदार पटेल वगैरह जनताके सेवक है। जनताकी इच्छाके विरुद्ध वे कुछ कर नही सकते। अगर हम उन्हें कहे कि आप अपने पदोंपरसे हट जाइए तो वे वहां रह नही सकते। वे रहना भी नही चाहते। वे लोग हमेशा कहते है कि हम तो लोगोंका ही काम करना चाहते है। हम लोगोके सेवक है। बात सच भी है। ३२ बरससे हम अंग्रेजोंसे लड़ते आए हैं और हमने यह बता दिया कि सच्ची लोकसत्ता कैसे चलती है, लेकिन हमारी सत्ता अंग्रेजों-जैसी नही है। वे इंग्लैंडसे फौज वगैरह ला सकते थे। हमारे पास वह सब नही है; लेकिन हमारे मंत्रियोंके पास इससे भी बडी ताकत है। जवाहरलालजी, सरदार पटेल वगैरहके पीछे फौज और पुलिससे बढकर लोक-मतकी ताकत है।

अंकुशकी जरूरत क्यों पड़ी ? व्यापारियोकी बेईमानी और नफाखोरीके डरसे ही अकुश लगानेकी जरूरत पड़ी। एक मजदूरको अपनी मेहनतके लिए जो पैसा मिलना चाहिए, उससे ज्यादा एक व्यापारीको उसकी मेहनतके लिए क्यो मिलना चाहिए ? उसे अधिक नही लेना चाहिए। अगर

व्यापारी लोग इतना समझ ले तो आज हिंदुस्तानमें हमे खाने-पहननेकी चीजोंकी जो मुसीवतें वरदाश्त करनी पड़ती है, वे न करनी पड़े। अगर हम-आप इस अंकुशको वरदाश्त नही करना चाहते तो उसे हटना ही होगा। अगर आप सच्चे है, मैं सच्चा हूं तो अंकुश रह नही सकेगा। हम सच्चे न रहे तव तो अंकुश उठनेसे हिंदुस्तान मर जायगा। व्यापारी मंडलको और मिल-मालिकको आपसमे मिलना चाहिए, उनके प्रति जो शक किया जाता है उसे दूर करना चाहिए और एक-दूसरेकी शक्ति वढ़ानी चाहिए। गीताजीका श्लोक है "देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।" देव आसमानमे नही पड़े है। हमारी लडकिया जैसे देवियां मानी जाती है, वैसे ही हम भी देव है। लेकिन कोई अपनेको देव कहते नही। वह अच्छा भी है। यह मनुष्यकी नम्रता है। तो हम देवो-जैसे शुद्ध वने, शुद्ध रहें और सुखी रहे तव हमारी गरीवी, भुखमरी, नंगापन वगैरह सव चला जायगा।

जहांतक, खासकर कपड़ेका संवंध है, लोग गांवोंमे अपनी जरूरतका कपड़ा खुद तैयार कर सकते है और उन्हे करना चाहिए। हमारी देवियां जव अपने पाक हाथोंसे सूत कातेंगी तभी करोड़ों रुपये गांववालोकी जेवोंमे जायंगे। ऐसा शुद्ध कौडीका सच्चा व्यापार हम करें। मै तो अपनेको किसान, भंगी, व्यापारी सभी मानता हूं। शुद्ध कौड़ीका व्यापार आप मुझसे सीखिए। मै व्यापार करना जानता हूं। आखिर वकालत तो मैने की है। वकालत भी तो एक किस्मका व्यापार ही है न? आज भी सवकी सेवा करता हूं तो व्यापार ही करता

हैं। किसी भी तरीकेसे पैसे कमा लेना ही व्यापार नहीं है। आप अगर लोगोंकी सेवाके खातिर अंकुश निकालना चाहते हैं, अपने खातिर नहीं, तो वह जायगा ही। आपने लिखा है कि "अंकुश हटानेमें ही हिंदुस्तानकी उन्नति और आजादी रही है।" अगर वह सच्चा है तो आपके व्यापारमें बहुत सचाई होनी चाहिए, बहादुरी होनी चाहिए।

मेरे पास एक पत्र आया है, जिसमें लिखा है कि हिंदुस्तानमें विदेशी कपड़ा बहुत आने लगा है। यह भी लिखा है कि हमारा कपड़ा बाहर भेजा जाता है। मेरी रायमें ये दोनों चीजें गलत हैं। अब तो आप शायद ऐसा भी कहने लगें कि हम हिंदुस्तानकी स्त्रियोंसे शादी नहीं करेंगे, बाहरकी स्त्रियां लायेंगे। तो वह कहांका व्यापार होगा? मेरी मां तो मेरी ही मां है। क्या दूसरी स्त्री ज्यादा खूबसूरत होगी तो उसे मैं अपनी मां बनाऊंगा? ऐसे ही आपको बाहरके खूबसूरत कपड़े नहीं मंगाने चाहिए।

आज व्यापारी लोग पैसा कमानेके लिए बाहरसे कपड़ा मंगाते हैं; लेकिन हम विदेशी कपड़ा क्यों मंगाएं और हमारा कपड़ा बाहर क्यों भेजें? यहां जितना कपड़ा बनता है उसीसे काम चलावें और हमारी जरूरत पूरी होनेके बाद बचे तो बाहर भेजें। मिलका कपड़ा भले आप बाहर भेजे, लेकिन उसी हालतमें, जब हम जरूरतकी पूरी खादी अपने देशमें तैयार कर लें। कपड़ेका अंकुश तो जाय, मगर साथमें पेट्रोल, लकड़ी वगैरहका अंकुश भी जाना चाहिए।

यहां लिखा है कि "मिलवालोंकी चालसे सावधान रहो।"

तब तो व्यापारियोंकी चालसे और मेरी चालसे भी लोगोंको सावधान रहना होगा। अगर मैं दगा करता हूं, सेवाके नामसे अपना स्वार्थ साधता हूं तो मेरा गला काटना होगा। अगर मिल-मालिक या व्यापारी स्वार्थ साधते हैं तो उनका बहिष्कार करना चाहिए।'[1]

नई दिल्ली, २८–१२–'४७

: ७९ :

उर्दू 'हरिजन'

पाठक जानते हैं कि नागरी लिपिमें और उर्दू लिपिमें भी इसी नामसे अलग-अलग साप्ताहिक 'हरिजन' निकलता है। उर्दू लिपिमें जो निकलता है, वह उर्दू 'हरिजन' है। उसकी गिरती हुई हालतके बारेमें श्रीजीवणजी लिखते हैं :

"आज आपको उर्दू 'हरिजनसेवक'के बारेमें लिखनेकी जरूरत आ पड़ी है। इस वक्त इस पत्रको मुश्किलसे ढाई सौ कापियां खपती हैं। हम लोगोंने जब इसे शुरू किया था तब इसकी लगभग अठारह सौ कापियां खपती थीं। धीरे-धीरे बिक्री कम हो गई, खास करके लाहौरके दंगेके बाद। पहले अकेले लाहौर शहरमें पांच सौसे सात सौ कापियां जाती थीं। मौजूदा हिसाबसे इसे चालू रखें तो हर माह डेढ़ हजार रुपयोंका नुकसान सहना पड़े, यानी सालभरमें बीसेक हजारका नुकसान हो। आप कभी नहीं चाहेंगे कि अखबारको इस तरह चालू रखा जाय। सच पूछा जाय

---

[1] हार्डिंज लाइब्रेरीमें व्यापारियोंकी एक सभामें दिया गया भाषण।

तो सितंबरमें मैं आपसे बिड़ला भवनमें मिला था तब इस बारेमें आपने मुझसे बात की ही थी। मगर मुझे उम्मीद थी कि देशका वातावरण सुधरनेपर इस हालतमें फेर पड़ेगा। इसके सिवा मेरे मनमें एक ख्याल यह था कि लोकसभामें कोई निश्चित प्रस्ताव पास न हो जाय तबतक नुकसान उठाकर भी इसे चालू रखा जाय, जिससे किसी तरहकी गलतफहमी न हो। अभी लोकसभाकी बैठक अप्रैलमें होगी। इसके बाद भी प्रस्तावका काम कब होगा, यह दूसरा सवाल है। इस तरह इस अखबारको अभी चार महीने और चालू रखें तो कोई खास हर्ज नहीं है, मगर पांच-छः हजारका ज्यादा नुकसान सहना पड़ेगा। इस तरह पूरी परिस्थितिका ख्याल करके आप अपना जो निर्णय देंगे, उसके मुताबिक मैं काम करूंगा। मौजूदा कलुषित वातावरणमें हमारा अखबार बंद होनेसे गलतफहमी न बढ़े, इसका खास विचार रखना होगा।"

मेरी हमेशा यह राय रही है कि नुकसान उठाकर कोई अखबार न निकाला जाय। लोगोंको जिस अखबारकी जरूरत हो, उसे वे कीमत देकर ले। जो अखबार विज्ञापन या इश्तहार छापकर अपना खर्च निकाले, उसे मैं स्वावलंबी अखबार नही मानता। उर्दू 'हरिजन'को नुकसान उठाकर इतना भी चलने दिया, इसका कारण यह था कि 'हरिजन'की अलग-अलग भाषाकी प्रतियोमे कुल मिलाकर नुकसान नही हो रहा था। मगर इस तरह अखबार निकालनेकी भी कोई हद होती है। हिंदुस्तानी और दो लिपियोंके बारेमे मेरे विचार पहले जैसे ही हैं। इसलिए अभी थोड़े समयतक जैसे चलता है वैसे ही उर्दू अखबार निकलता रहेगा। इस अर्सेमें गुजराती 'हरिजन' पढ़नेवाले और दूसरे लोग सोच ले कि वे उर्दू 'हरिजन' निकल-वाना चाहते है या नही। अगर चाहते है तो उन्हे उसके ग्राहक

बढ़ानेमें तबतक मदद करनी चाहिए, जबतक उनकी तादाद दो हजारतक न पहुंच जाय। इसके साथ ही वे दूसरी बात भी सोच लें। अगर उर्दू लिपि पसंद न पडती हो और उर्दू लिपिमे 'हरिजन' बंद करना पड़े तो नागरी लिपिमे 'हरिजन' न निकालनेका धर्म पैदा होगा। नागरी लिपिमें 'हरिजन' निकालनेका स्वतंत्र धर्म मैं नही समझता। सुधारकके नाते मेरा धर्म है कि या तो मैं दोनों लिपियोंमें अखबार निकालू या फिर एकमें भी नहीं।

'हिंदी' नाम न रखकर 'हिंदुस्तानी' क्यों रखा और नागरी-उर्दू दोनों लिपियोका आग्रह क्यों है, इसके बारेमें पहले अच्छी तरहसे लिखा जा चुका है। अब मुझे कोई नई दलील नही सूझती। यह लेख सिर्फ इतना बतलानेके लिए लिखा है कि उर्दू लिपिमे निकलनेवाले 'हरिजन'को किस तरह चालू रखा जा सकता है। मैं यह माननेकी हिम्मत रखता हूं कि मेरी आशा सफल होगी।

नई दिल्ली, २९-१२-'४७

: ८० :

खादकी व्यवस्था

"इधर-उधर बिखरा हुआ कूड़ा, द्रव हो या पदार्थ, जनताके स्वास्थ्य और सुविधाका रोड़ा होता है, जब कि अपने उचित स्थानपर इकट्ठे उसी कूड़ेकी खाद काममें आती है। कूड़ा

बिखराकर भूमिमाताका भोजन छीन लेना संगीन जुर्म है।"

ऐसा मीराबहनने २३–११–'४७के 'हरिजन' (पृष्ठ ४२८–२९)में प्रकाशित अपने एक पत्रमें कहा है, जो इस प्रकार है :

"हम अपनी भूमाताके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते। वह परिश्रमपूर्वक हमें भोजन देती है, लेकिन इसके बदलेमें हम उसे नहीं खिलाते। सुपुत्रोंकी तरह अगर हम अपनी पूजनीया माकी सेवा नहीं करते तो वह हमारा पालन-पोषण कैसे करेगी? हर साल हम खेत जोतकर उनमें बीज बोते और फसल काटते हैं, लेकिन जमीनको उसकी खूराक, खाद कभी-कभी ही देते हैं। जो देते भी हैं वह अधकच्चा कूड़ा होता है। जिस तरह भलीभांति पकाया भोजन हमें चाहिए, वैसे ही जमीनको भी भलीभांति तैयार की गई खाद जरूरी है।"

उत्सुक जन इस पत्रकी प्रति मीराबहन, किसान आश्रम, ऋषिकेश (हरिद्वारके पास)से मंगा सकते हैं।

नई दिल्ली, २९–१२–'४७

: ८१ :

धूलका धान

'धूलमेंसे धान' ऐसा शीर्षक भी रखा जा सकता था, मगर मैंने 'धूलका धान' शीर्षक रखना पसंद किया है।

धूलको छानकर उसमेंसे अनाजके दाने निकाल लेनेकी क्रियाको मैं धूलमेंसे धान निकालना कहता हूं। उसी तरह महाउद्योगी चीनके लोग धूल या रेतमेंसे सोनेकी रंज धोकर

निकालते है, इस क्रियाको भी मैं धूलमेंसे धान निकालना कहता हूं। यहां धूलका रूप बदल गया और धानका तो बहुत ही बदल गया। मामूली तौरपर हम अनाजको धान कहते है। मगर जब धान शब्द सोनेकी रजके लिए काममे लाया जाता है तब तो उसके रूपमें बहुत बड़ा फर्क हुआ न ? यहां धानका मतलब ऐसी किसी उपयोगी चीजसे है, जिसकी कीमत आंकी जा सके।

मगर 'धूलका धान' शब्दोंका प्रयोग करे तब धूलका रासायनिक रूप बदला हुआ माना जायगा। जैसे कि धूल यानी मिट्टीका अनाज बनाएंगे तब धूलका धान करना कहा जायगा। मिट्टीमे अनाजके बीज डाले, उसमे जरूरतके मुताबिक पानी दें तो अनाज पैदा हो। इसे मै धूलका धान करना कहता हू। अपनी भाषाका रूप निश्चित नही हुआ, क्योंकि उसकी उपेक्षा की गई है।

अब मैं मूल चीजपर आता हूं। अंग्रेजी शब्द 'कम्पोस्ट'-को मै धूलका धान मानता हूं। कम्पोस्ट यानी गोबर और मनुष्य, जानवर और पक्षियोंकी विष्ठा या मल, घास, कूड़ा-करकट, छिलके, जूठन और पेशाब-जैसी चीजोंके उचित मेलमेंसे पैदा होनेवाली सुवर्णरूपी जीवित खाद। इसे खेतकी मिट्टीमें मिलाकर उसमें बीज बोएं तो ऐसे खेतमें कम-से-कम दुगुनी फसल तो जरूर पैदा हो और फिर भी जमीन अपना कस न छोड़े।

इसके बारेमे मीराबहन खूब मेहनत उठा रही है। उन्होंने ऋषिकेशमें किसान-आश्रम खोला है। जो काम उन्होंने दिल्लीमें

शुरू किया, उसे वहांसे जारी रखना चाहती है, उन्होंने इस बारे-में छोटी-छोटी पत्रिकाएं निकालना शुरू किया है। उनके पाससे पत्रिका मंगवाई जा सकती है। उनकी पत्रिका उर्दू लिपिमे निकलती है। खुद मीराबहनको हिंदुस्तानीका ज्यादा ज्ञान नही है। इससे वह अंग्रेजीमे लिखती है और उनके मातहत काम करनेवाले उसका उर्दूमें तरजुमा करते है।

नई दिल्ली, २९–१०–'४७

: ८२ :

तात्यासाहब केळकर

दोस्तोने मुझे कई बार पूछा कि मैंने तात्यासाहब केळकर-जैसे महान् देशभक्तकी मृत्युका उल्लेख क्यो नही किया, खासकर इसलिए कि वे मेरे राजनैतिक विरोधी थे और इससे भी ज्यादा इसलिए कि महाराष्ट्रके एक दलके लोगोंमे मेरे बारेमें बहुत बड़ी गलतफहमी है। इन कारणोंने मुझपर असर नही किया, हालांकि मेरे टीकाकारोंके मुताबिक इन्ही कारणोसे मुझे तात्यासाहबकी मृत्युका उल्लेख करनेके लिए प्रेरित होना चाहिए था।

मृत्यु-जैसी बड़ी भारी घटनाका आम रिवाजके मुताबिक उल्लेख कर देना मै बहुत अनुचित मानता हूं; लेकिन देर हो जानेपर भी अपने पुराने-से-पुराने दोस्त हरिभाऊ पाठकके आग्रहके कारण अब मुझे ऐसा करना चाहिए।

यह बात मैं एकदम कबूल कर लूंगा कि अगर महत्त्वपूर्ण जन्मों और मृत्युओंका उल्लेख करना 'हरिजन'के लिए आम रिवाज होता तो तात्यासाहबकी मृत्युका सबसे पहले उल्लेख किया जाना चाहिए। लेकिन 'हरिजन' पत्रोंको ध्यानसे पढ़ने-वाले पाठकोंने देखा होगा कि 'हरिजन'ने ऐसे किसी रिवाजको नहीं माना है। इस तरहकी घटनाओंका उल्लेख करना मेरे अवकाश और किसी समयकी मेरी धुनपर निर्भर रहा है। पिछले कुछ अरसेसे तो मैं नियमसे अखबार भी नहीं पढ़ सका हूं।

इसके खिलाफ कोई कुछ भी कहे, लेकिन मेरे राजनैतिक विरोधी होते हुए भी तात्यासाहबको मैंने हमेशा अपना दोस्त माना था, जिनकी टीकासे मुझे फायदा होता था। स्व० लोकमान्यके माने हुए अनुयायीके नाते मैं उन्हें जानता था और उनकी इज्जत करता था। मेरे खयालमें सन् १९१९ मे अखिल भारत कांग्रेस कमेटीकी एक बैठकमें मैंने यह सिफारिश की थी कि कांग्रेसका एक विधान तैयार किया जाय और कहा था कि अगर लोकमान्य तात्यासाहबको और देशबंधु श्रीनिशीथ सेनको मददके लिए मुझे दे दें तो मैं विधान तैयार करके कांग्रेसके सामने पेश करनेकी जिम्मेदारी लेता हूं। अपने साथ काम करनेवाले इन दोनों सज्जनोंकी तारीफमें मुझे यह कहना चाहिए कि हालांकि मैंने समयपर विधानका अपना मसविदा उनके सामने पेश कर दिया, लेकिन उन्होंने कभी उसमें रुकावट नही डाली। विधानके मसविदेपर विचार करनेके लिए जो कमेटी बैठी, उसमें तात्यासाहबने हमेशा ऐसी

टीका की, जिससे उसे सुधारने-संवारनेमे मदद मिली। इसके अलावा मेरे सुझावपर ही तात्यासाहवको हमेशा कांग्रेस वर्किंग कमेटीका सदस्य बनाया जाता था। मुझे ऐसा एक भी मौका याद नही आता जब उनकी टीका—हालांकि वह कभी-कभी कडुवी होती थी—रचनात्मक न हुई हो। वह निडर थे; लेकिन सभ्य और मित्रता भरे थे।

मुझे बहुत पहले यह मालूम हो चुका था कि वे मराठीके बड़े विद्वान लेखक थे। मुझे इस बातका अफसोस रहा है कि मराठीके तात्यासाहब और स्व० हरिनारायण आप्टे जैसे आधुनिक लेखकोकी बुद्धिका अमृतपान करनेके लिए मराठीका काफी अध्ययन करनेका मुझे कभी समय नही मिला। हिंदुस्तानी आकाशके श्री नरसोपंत चितामन केळकर-जैसे चमकीले तारेके अस्तकी उपेक्षा करना मेरे लिए असभ्य और अशोभन बात होगी।

नई दिल्ली, ३१-१२-'४७

: ८३ :

अहिंसा कभी नाकाम नहीं जाती

एक यूरोपियन भाई लिखते है :

"रॉय वाकरने आपके कामपर, जो सराहनेके काबिल है, 'स्वोर्ड ऑव गोल्ड' ('सोनेकी तलवार') नामकी एक किताब लिखी है, जिसे पढ़कर रोंगटे खड़े होने लगते है। मैंने उस किताबको ध्यानसे पढ़ा। उससे पता

चला कि आपने जिंदगीभर अहिंसापर चलने और दूसरोंको चलानेकी पूरी कोशिश की है। किताब पढ़कर मेरी तसल्ली हो गई कि कम-से-कम जहांतक हिंदुस्तानके नेताओं और आम लोगोंका सवाल है, अपनी अपार लगनकी बदौलत आपको अपने काममें कामयाबी मिली है। ब्रिटेनने जो जाहिरा तौरपर इस तरह नेकदिली और दोस्तीके साथ हिंदुस्तान छोड़ दिया, उससे यह उम्मीद मालूम होती है कि अहिंसाकी कदर अब सिर्फ आपके मुल्कतक ही सीमित नहीं है। मालूम होता है कि हिंसाकी मजबूत मोटी दीवारें पहली बार कहीं-कहीं कुछ टूटी है और इन्सानी समाजके लिए कुछ भले दिन आनेवाले हैं।

"पर जॉर्ज डेवीजके 'पीस न्यूज' के आखिरी संस्करणमें यह छपा है कि आप खुद एक तरह अपनी हार मान रहे हैं। इसे पढ़कर मुझे उतनी ही ज्यादा निराशा हुई। मेरा दिल यह पढ़कर बड़ा दुखी हुआ कि आपको खुद आज जो निराशा अपने दिलमें महसूस हो रही है, वह पहले कभी न हुई थी। यह बिलकुल सच है कि ईश्वर आदमीकी कामयाबी नही देखता, बल्कि उसकी सचाई और प्रेम देखता है। फिर भी यह देखकर दुःख होता है कि इन्सानी समाज हिंसामें इतना डूबा हुआ है कि आपने और आपके थोड़ेसे साथियोंने जिंदगीभर जो रूहानी ताकत दिखाई है और जबरदस्त कुरबानियां की है, उनका भी समाजपर असर नहीं हुआ।

"मैं मानता हूं कि चीजोंकी असलियतको जितनी अच्छी तरह आप देख और समझ सकते हैं, मैं नहीं देख सकता। आप कहीं अच्छा समझ सकते हैं। फिर भी मैं नहीं मान सकता कि आपकी इतनी जबरदस्त और बहादुरीकी कोशिशें निकम्मी जाएं और इन्सानी समाजपर उनका असर न हो। आपने अपने शब्दोंसे और अपने कामोंसे जो अच्छे बीज मेहनतके साथ लगातार अपने चारों तरफ बोए हैं, वे फिजूल जाएं, यह दिल नहीं मानता।

"जो हो, कम-से-कम मैं (और मुझे भरोसा है कि जो बात मैं कहता हूं वही करोड़ोंके दिलसे निकल रही है) अपना यह जरूरी फर्ज समझता हूं कि आप जिस चीजको इन्सानी समाजके भले और उसके छुटकारेका एकमात्र रास्ता समझते थे, उसके लिए आपने जो अपनी सारी जिंदगी दे दी, इसके लिए मैं दिलसे आपका हद दर्जेका अहसान मानूं।"

जिस रिपोर्टका आपने जिक्र किया है, वह मैंने नही देखी। जो हो, मैंने जो कुछ कहा है उसका मतलब अहिंसाकी असफलतासे नही है। मैंने जो कुछ कहा है, उसका मतलब यह है कि मैं खुद वक्तपर इस बातको न देख सका कि जिसे मैं अहिंसा समझा था, वह अहिंसा थी ही नही, बल्कि कमजोरोंका मंद विरोध था, जो किसी मानीमे भी कभी अहिंसा कहा ही नही जा सकता। आज हिंदुस्तानमे जो भाई-भाईकी लडाई हो रही है, वह उन ताकतोंका सीधा नतीजा है जो तीस बरसके कमजोरोके कारनामोंने पैदा कर दी है। इसलिए आज दुनियाभरमे जो हिंसा फूट पड़ी है, उसे ठीक-ठीक देखनेका सही तरीका यही है कि हम इस बातको समझे कि मजबूत लोगोकी उस अहिंसाका ढंग, जिसे कोई जीत ही नही सकता, अभी हमने पूरी तरह नही समझ पाया है। सच्ची अहिंसाकी ताकतका एक माशा भी कभी जाया नही जा सकता। इसलिए मुझे यह घमंड नहीं करना चाहिए और न आप-जैसे दोस्तोको इस धोखेमे रहना चाहिए कि मैंने अपने अदर भी कोई बडी बहादुरीभरी और टकसाली अहिसा दरसाई है। मैं सिर्फ इतना दावा कर सकता हूं कि मै बिना रुके उस तरफ बढा चला जा रहा हूं। मेरी इस बातसे अहिंसामे आपका विश्वास

मजबूत हो जाना चाहिए और इससे आपको और आप-जैसे दोस्तोंको इस रास्तेपर और तेजीसे बढनेमे मदद मिलनी चाहिए।
नई दिल्ली, १-१-'४८

: ८४ :

नपी-तुली बात कहिए

मलाबारसे एक भाई लिखते है :

"२१ दिसंबर, १९४७ के 'हरिजन' में श्री देवप्रकाश नय्यरने 'तकलीकी ज्ञान-शक्ति'के बारेमें जो बातें विश्वासके साथ लिखी है, उनसे आश्चर्य होने लगता है। उन्होंने यह बताया है कि तकलीमें सारा ज्ञान समाया हुआ है या तकलीसे सारा ज्ञान हासिल किया जा सकता है या तकली ही सारे ज्ञानका निचोड़ है। मैं खुद लंबे समयसे कातता हूं और जीवनकी गांधीवादी फिलासफी (दर्शन) में मेरा विश्वास है; लेकिन ऊपरका लेख पढ़कर मुझे बड़ा अचरज हुआ। यह कहना कि तकली ज्ञानका 'अंत' है और उसके जरिए दुनियाके हर विषयका शिक्षण दिया जा सकता है, नीम हकीमकी उस गोलीकी तरह है, जिसके बारेमें हर तरहकी बीमारीको अच्छा करनेका दावा किया जाता है। गांधीजी भी तकलीके लिए ऐसी जादूभरी ताकतका दावा नहीं करते। इसमें कोई शक नहीं कि तकली, चरखे और कताईका शिक्षाकी उचित योजनामें, खासकर नई तालीममें, एक स्थान है। लेकिन यह कहना कि तकली स्वभावसे हमें गणित, पदार्थ-विज्ञान, अर्थशास्त्र वगैरहके अध्ययनमें ले जाती है, 'भावुक मूर्खता'के सिवा कुछ नहीं है। शिक्षाके क्षेत्रमें तकलीके गुणों और उपयोगिताको बढ़ा-चढ़ाकर बताना उतना ही बुरा है, जितना कि

दूसरे लोगोंद्वारा उसके सही स्थानको माननेसे इन्कार करना, बल्कि उससे भी बदतर है। यह पढ़कर हँसी आती है कि तकलीके जरिए हम पदार्थ-विज्ञान वगैरहके वैज्ञानिक नियमोंका अध्ययन कर सकते हैं। गांधीजीने देशकी माली हालत सुधारने और गरीबीको मिटानेके लिए तकली और चरखेको दाखिल किया और कहा कि जब आम जनता इन दोनोंका उपयोग करेगी तो वह नैतिक दृष्टिसे ऊपर उठेगी। इस तरह गांधीजी तकलीके लिए आर्थिक और नैतिक गुणोका ही दावा करते हैं (जिसकी मुझे यहां ज्यादा चर्चा करनेकी जरूरत नहीं)। और इतना दावा काफी है। तकलीके लिए इससे ज्यादा बड़ा दावा क्यो किया जाय? इसकी जरूरत भी क्या है? तकलीका उत्साह रखनेवालोको कताईके पक्षमें अपनी दलीलें इस हदतक नहीं ले जानी चाहिए कि लोग उनपर हँसें। कताईके मकसदको इस तरह आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।"

इससे जाहिर होता है कि खत लिखनेवाले भाईने श्री देवप्रकाश नय्यरके तकलीके बारेमें लिखे लेखको पूरी सावधानीसे नहीं पढ़ा है। मैंने उसे पढा है। उसमे उन्होने ऐसा कोई दावा नही किया है, जिसकी खत लिखनेवाले भाईने कल्पना कर ली है। 'तकलीकी ज्ञान-शक्ति'के लेखकने यह नहीं कहा है कि "तकलीमें सारा ज्ञान समाया हुआ है", या कि "वह तकलीके जरिये हासिल किया जाता है", और न उन्होंने यह कहा है कि "तकली ज्ञानका निचोड़ है।" उनका सिर्फ इतना ही कहना है कि जो बहुत-सा ज्ञान हम किताबोंके जरिये हासिल करते हैं, वह योग्य शिक्षकोद्वारा दस्तकारियो-की मारफत ज्यादा अच्छी तरह सिखाया जा सकता है। यह हकीकत कि खत लिखनेवाले भाईको, जो लंबे समयसे कताई

करते है, श्री देवप्रकाश नय्यरके दावेसे 'बड़ा अचरज' हुआ है और वह उसे 'भावुक मूर्खता' कहते हैं, इस बातको साबित करती है कि शिक्षा तकलीमे नहीं रहती, बल्कि एक शिक्षा-शास्त्रीमें रहती है, जो श्री देवप्रकाश नय्यरकी तरह तकलीकी शक्तियों और संभावनाओंकी परीक्षा करके ऊपरका दावा करनेका हक रखता है।

मुझे डर है कि खत लिखनेवाले भाईके इस आत्म-संतोषको मुझे दूर कर देना पडेगा कि मैंने भी निर्दोष दिखाई देनेवाली तकलीके लिए "आर्थिक और नैतिक गुणों"के सिवा दूसरे गुणोंका दावा नही किया है। मुझे यह कहते हुए अफसोस होता है कि मेरे इस मामूली दावेको भी सब लोगोंने स्वीकार नहीं किया है। शायद हिंदुस्तानमे मै पहला आदमी था, जिसने तकलीको उन गुणोंसे विभूषित किया, जिन्हें बढ़े-चढ़े कहा जा सकता है। इस क्षेत्रमें अमली शिक्षा देनेवाले शिक्षकोंने दस्तकारियोंमें उनसे कही ज्यादा संभावनाएं खोज निकाली है, जिनका मैंने जिक्र किया था। इसका सारा श्रेय उन्हीको है।

में खत लिखनेवाले भाईको जोरोंसे यह सलाह दूंगा कि वह नम्रतासे श्री देवप्रकाश नय्यरके सावधानीसे पेश किए गए दावेको मंजूर करें और इस बारेमे उनसे ज्यादा जानकारी पानेकी कोशिश करे कि उन्होने अपने विद्यार्थियोंको नई तालीमके पाठ सिखानेमें तकलीके बारेमे यह खोज कैसे की। अगर उनकी खोज कल्पित होगी तो खत लिखनेवाले भाईको जल्दी ही इसका पता लग जायगा और श्री देवप्रकाश नय्यरको अपनी हार माननी पडेगी। कहा जाता है कि एक सेवके

अपनी डालसे नीचे गिरनेसे न्यूटनका तेज दिमाग गुरुत्वाकर्षणका नियम खोज सका था।

नई दिल्ली, २-१-'४८

: ८५ :

क्या मैं इसका अधिकारी हूं ?

मेहमानदारी करनेवाले हिंदुस्तानका किनारा छोडनेसे पहले रेवरेंड डॉ० जोन हेनिस होम्सने मुझे एक लंबा खत लिखा था। उसमें वह कहते हैं :

"बेशक, हालके महीनेमें होनेवाली दुःखभरी घटनाओंसे आप बहुत ज्यादा दुखी हुए हैं—उनके बोझसे आप दब-से गए हैं; लेकिन आपको कभी यह महसूस नहीं करना चाहिए कि इससे आपकी जिंदगीके कामको किसी तरह धक्का लगा है। मनुष्य-स्वभाव बहुत ज्यादा सहन नहीं कर सकता, वह बहुत बड़े दबावके नीचे टूट पड़ता है, और इस मामलेमें यह दबाव जितना अचानक था, उतना ही भयानक भी था। लेकिन इस मौकेपर भी हमेशाकी तरह आपका उपदेश सच्चा और आपका नेतृत्व ठोस बना रहा। आपने अकेले हाथों हिंदुस्तानको बरबादीसे बचा लिया और पलभरके लिए जो हार दिखाई दी, उसमेंसे जीतको जन्म दिया। पिछले कुछ महीनोंको मैं आपके अनोखे जीवनकी बड़ी-से-बड़ी विजयके महीने मानता हूं। इन अंधेरेसे भरे दिनोंमें आप जितने महान् साबित हुए हैं, उतने पहले कभी न हुए थे।"

मुझे ताज्जुब होता है कि क्या यह दावा साबित किया जा सकता है ? इसमें मुझे जरा भी शक नहीं कि अहिंसाके

बारेमें डॉ० होम्सने जो कुछ कहा है, उससे कई गुना ज्यादा साबित करके दिखाया जा सकता है। मेरी कठिनाई बुनियादी है। क्या डॉ० होम्सने अहिंसाकी जितनी तारीफ की है, उसके उतने गुण भी दुनियाको दिखाने लायक योग्यता मैंने हासिल कर ली है? मैं अहिंसाके कामको कितने ही अपूर्ण रूपसे क्यों न जानूं, फिर भी उसके बारेमें ऐसे दावे, जिन्हें बिना किसी शकके साबित न किया जा सके, पेश करनेमें ज्यादा-से-ज्यादा सावधानी रखना मैं हर कारणसे जरूरी समझता हूं।

नई दिल्ली, ३–१–'४८

: ८६ :

राष्ट्र-भाषा और लिपि

शिलांगसे श्री रमेशचंद्रजी पूछते हैं :

(१) "राष्ट्रभाषाको 'हिंदी' कहिये या 'हिंदुस्तानी' यह कोई खास विवादका सवाल नहीं है। रोजमर्राकी बातचीतमें तो चालू हिंदुस्तानी काममें आएगी ही। ऊंचे साहित्य, विज्ञान व ऐसे दूसरे विषयोंके लिए नए शब्दोंका कोष संस्कृत भाषासे ही बनेगा, इससे भी शायद ही कोई इन्कार करेगा। यह बात साफ-साफ सबको बतलाई जाय तो क्या हर्ज है?"

इस सवालका पहला हिस्सा तो ठीक है। अगर एक नामके सब एक ही मानी करें तो झंझट रहती ही नही। झगड़ा नामका नहीं है, कामका है। काम एक हो तो अनेक नामका विरोध वितंडावाद होगा।

ऊंचे साहित्य और विज्ञानके शब्द संस्कृतमेंसे ही क्यों हों ? इस बारेमे कोई आग्रह होना ही नही चाहिए। एक छोटी-सी समिति ऐसे शब्दोंका कोष बना सकती है। इसमें बात होगी चालू शब्दोंको इकट्ठा करनेकी। मान लीजिए कि एक अंग्रेजी शब्द हिंदुस्तानीमे चल पड़ा है, उसे निकाल-कर हम क्यों खास संस्कृत शब्द बनावें ? ऐसे ही, अगर अंग्रेजी-का चलता शब्द ले ले तो उर्दू क्यो नही ? 'कुरसी' शब्दके लिए 'चतुष्पाद-पीठिका' ले कि बिना रोकटोकके 'कुरसी' लें ? ऐसी मिसालें और भी निकल सकती हैं।

(२) "जो मसला है, सो लिपिका है। दो लिपि चालू होते हुए भी यह सवाल (और ठीक सवाल) सभी करते हैं कि दो लिपिका चलन राष्ट्रके कामको चलानेमें बेकार बोझ साबित होगा। तब दो लिपिके बदले एक लिपि, जो सभी प्रांतोके लिए सहज और आसान हैं, क्यो न मानी जाय ?

"दो लिपि माननेके मानी भी मै समझना चाहता हूं। क्या उसका यह मतलब होगा कि केंद्रीय सरकारकी सब घोषणाएं दोनो लिपियोमें छापी जायंगी ?

"फिर, तार-घर वगैरहसे जो तार आदि निकलेंगे, वे तो किसी एक ही लिपिमें लिखे जायंगे। दूसरी लिपिका उपयोग इन जगहोंमें किस तरह हो सकेगा, यह भी मै जानना चाहता हूं।

"मैं यह माननेको तैयार नहीं हूं (हालांकि बहुतेरे लोग ऐसा कहते हैं) कि दूसरी लिपि मुसलमान भाइयोको खुश करनेके लिए रखी गई है। हमें तो यह देखना चाहिए कि किसीपर भी अन्याय किए बिना राष्ट्रका भला किस लिपिके चलनेमें होगा। नागरीके चलनसे मुसलमान भाइयोंको नुकसान होगा, ऐसा मानना तो ठीक नहीं है।

"जहांतक मै समझता हूं, दोनो लिपिका चलन थोड़े अर्सेके लिए

ही जरूरी है, जिससे कि वे लोग जो इन लिपियोंके जानकार नहीं हैं, धीरे-धीरे जान जायं। आखिरमें सभी एक लिपिको अपनावें, इसमें कैसे संदेह हो सकता है ?"

दो लिपिको रखते हुए जो आखिरमे आसान होगी वही चलेगी। यहां बात इतनी ही है कि उर्दूका बहिष्कार न हो। इस बहिष्कारमें द्वेष है। इस झगड़ेकी जड़मे द्वेष था, आज वह बढ़ गया है। ऐसे मौकेपर हम, जो एक हिंदुस्तान चाहते है, और वह हथियारोंकी लड़ाईसे नही, उनका फर्ज होता है कि दोनों लिपिको जगह दे। हम यह भी न भूले कि बहुतेरे हिंदू व सिक्ख पड़े है, जो नागरी लिपि जानते ही नही। मुझे इसका तजरबा हमेशा होता है।

करोड़ोंको दोनों लिपि सिखानेकी बात नही है। जिनको अपने सूबेसे बाहर काम करना है, उन्हे वे सीखनी चाहिएं। केंद्रके दफ्तरमें सब कुछ दोनों लिपियोंमे छापनेकी बात भी नही है। जो इश्तहार सबके लिए हों, उन्हें दोनों लिपियोंमें छापना जरूरी है। जब दोनों कौमोंके बीच जहर फैल गया है तब उर्दू लिपिका बहिष्कार लोक-वादका विरोध ही बताता है।

तार आदि जब रोमन लिपिमे नही लिखे जायंगे तब शायद उर्दू या नागरी लिपिमे लिखे जायंगे। इसे मैं छोटा सवाल मानता हूं। जब हम अंग्रेजीका और रोमन लिपिका मोह छोड़ेंगे तब हमारा दिल और दिमाग ऐसा साफ हो जायगा कि हम इस झगडेके लिए शरमाएंगे।

किसीको राजी रखनेके लिए कोई बेजा काम हम कभी न करें। पर राजी रखना हर हालतमें गुनाह नही है।

एक ही लिपिको सब खुशीसे अपनावे तो अच्छा ही है। ऐसा होनेके लिए भी दो लिपियोका चलना आज जरूरी है।
नई दिल्ली, ४-१-'४८

: ८७ :

छात्रालयोंमें हरिजन

भाई परीक्षितलाल लिखते है .

"बंबई सरकारने छुआछूत दूर करनेके दो कानून बनाए है। उनके आधारपर मंदिर, कुंए, धर्मशालाएं, स्कूल, होटल वगैरह तमाम जगहें, जहां दूसरे हिंदू जा सकते है, वहां हरिजन भी खुले तौरपर जा सकते है। ऊपर बताए हुए कानूनोमें सार्वजनिक छात्रालय भी आ जाते है और उनके अनुसार बंबई प्रांतके कई छात्रालय, जो आजतक सिर्फ हिंदुओकी ऊंची मानी जानेवाली जातियोके लिए ही खुले थे, अब अपने-आप हरिजनोके लिए भी खुले माने जा सकते है।

"थोड़े वक्तमें स्कूलों और कॉलेजोका चालू वर्ष पूरा होगा। यानी ऐसे सार्वजनिक छात्रालयोंमें नई भरती करनेका सवाल खड़ा होगा। मेरा ऐसा अनुभव हुआ है कि ऐसे छात्रालयोमें हरिजन विद्यार्थियोको दाखिल करनेके बारेमें और उनके साथ बैठकर खाना खानेके बारेमें विद्यार्थियोंका विरोध जितनी हदतक कम हुआ है, उतनी हदतक छात्रालयोके संचालक आगे नहीं बढ़ सके है। नतीजा यह हुआ है कि ज्यादातर विद्यार्थियोकी सम्मति होते हुए भी संचालक-मंडलोने स्वयं आगे बढ़कर अपने छात्रालयोका दरवाजा हरिजनोके लिए खुला नहीं रखा। संचालक-मंडलोंको अब कानून भी मदद करता है। ऐसी हालतमें हरिजन

विद्यार्थियोंको कानूनका सहारा लेकर छात्रालयोंमें दाखिल होनेकी जरूरत पड़े उससे पहले, उम्मीद है कि संचालक-मंडल अपने आप छात्रालयोंके दरवाजे खोलकर हिंदुस्तानकी सच्ची सेवा करेंगे।

"सूरतमें पाटीदार आश्रम और अनाविल आश्रममें हरिजन विद्यार्थी बाकायदा दाखिल हुए हैं। भावनगरके तापीबाई गांधी कन्यागृहमें हरिजन छात्राएं हैं। इस तरह क्या आप गुजरात-काठियावाड़के सभी सार्वजनिक और जातीय छात्रालयोंके संचालकोंसे सिफारिश करेंगे कि वे हरिजन विद्यार्थियोंको समान भावसे दाखिल कर लें?"

इसमें मैं इतना और बढ़ा देना चाहता हूं कि अगर विद्यार्थी सच्चे हों तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता। इस जमानेमें विद्यार्थियोंके आगे संचालकोंकी नहीं चल सकती। उसमें भी जब धर्म विद्यार्थियोंके पक्षमें हो और संचालक अधर्म कर रहे हों तब तो संचालकोंकी बिलकुल ही नहीं चल सकती। दुनियाको आम खानेसे काम है, पेड़ गिननेसे नहीं। चाहे जो कारण हो, छात्रालयोंमें हरिजन हक और इज्जतके साथ दाखिल होने चाहिए।

नई दिल्ली, ४-१-'४८

: ८८ :

प्रमाणित-अप्रमाणितका फर्क

नीचेके सवाल आज उठ सकते हैं। यह जमानेके बदलनेकी निशानी है:

"आजादी मिलनेके बाद शुद्ध खादी, अप्रमाणित खादी, मिलके

कपड़े और विलायती कपड़ेमें बहुत फर्क नहीं रह जाता। जितनी जरूरत हो, उतना खुद ही कातकर और बुनकर पहनें तो जरूर फर्क हो जाता है; क्योंकि इससे एक खास विचार-धाराका पता चलता है। पर जितना कपड़ा चाहिए, उतना सूत तो काता नहीं जाता। खादी तो खादी-भंडारसे ही खरीदते हैं। उसके लिए भी जितना सूत देना पड़ता है, खुद नहीं काता जाता है। शुद्ध खादीमें कोई सुधार नहीं दिखाई देता। अप्रमाणित खादीमें बहुत तरहके कामके कपड़े आते हैं। इसका कारण यह दिखाई देता है कि शुद्ध खादीवालोंको सुधारमें कोई रस नहीं है। आजकल मजदूरी इतनी ज्यादा हो गई है कि जीवन-वेतनका भी सवाल नहीं रहता। फिर जरूरत हो तो अप्रमाणित खादी लेनेमें क्या हर्ज है?

"सारे देशमें कपड़ेकी काफी कमी है। राष्ट्रीय सरकार खुद विलायती कपड़ा मंगाती है। विलायती कपड़ा मंगाना न मंगाना सरकारके हाथमें है। फिर भी वह कपड़ा मंगाती है तो फिर खरीदनेमें क्या बुराई है?"

प्रमाणित खादी ही प्रमाण हो सकती है। यहां 'प्रमाणित' शब्दसे असली मतलब पूरी तरह जाहिर नहीं होता। प्रमाणित-का असली मतलब है—वह खादी जिसमें सूत पूरे-पूरे दाम देकर खरीदा गया है, जिसे ठीक दाम देकर हाथसे बुनवाया गया है और खादीका दाम नफाखोरीके लिए नहीं, बल्कि लोक-लाभके लिए ही रखा गया है। स्वावलंबी यानी अपनी बनाई खादीके सिवा बाकी ऐसी खादी बाजारसे लेनी पड़ती है। उस खादीके लिए कुछ प्रमाण जनताके लिए जरूरी है। ऐसा प्रमाण देनेवाली एक ही संस्था हो सकती है। वह है चरखा-संघ। इसलिए चरखा-संघ जिसे प्रमाण दे, वही प्रमा-णित खादी।

उसे छोडकर जो खादी मिले, वह अप्रमाणित हो जाती है।

प्रमाण-पत्र न लेनेमें कुछ-न-कुछ दोष तो होना ही चाहिए। दोषवाली खादी हम क्यों लें? दोषवाली और. बेदोषकी खादीमें फर्क है, इसमें शकके लिए गुंजायश ही नही हो सकती।

यह सवाल किया जा सकता है कि प्रमाण-पत्रकी शर्तमें ही दोष हो सकता है। अगर दोष है तो उसे बताना जनताका धर्म है। आलसके कारण दोष बतानेके बदले अप्रमाणित और प्रमाणितका फर्क उड़ा देना किसी हालतमें ठीक नहीं है। हो सकता है कि हममे कुचाल इतनी बढ़ गई है कि हम ठीक चाल जनतामें चल ही नहीं सकते, या जिसे हम ठीक चाल मानते है, वह धोखा ही है। इस हदतक जाना जनताके प्रतिनिधिका काम नही है।

खादी, स्वदेशी मिलके कपड़े और विदेशी कपड़ेमें फर्क है, इस बातमे शक ही कैसे पैदा हो सकता है? परदेशी राज गया, इसलिए परदेशी कपड़ा लाना ठीक बात कैसे हो सकती है? ऐसा खयाल करना ही बताता है कि हम परदेशी राजके विरोधका असली कारण ही भूलते है। परदेशी राज होनेसे मुल्कको बड़ा माली नुकसान होता था। इस माली नुकसानको मिटाना ही स्वराजका पहला काम होना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि स्वराजमें शुद्ध खादीको ही जगह है। उसीमे लोक-कल्याण है। उसीसे समानता पैदा हो सकती है।

नई दिल्ली, ५–१–'४८

: ८६ :

खादीकी मारफत

एक सज्जन लिखते है :

"सारे हिंदुस्तानकी कपड़ेकी कमी ६ माहमें दूर हो सकती है। उसके लिए दो शर्तें हैं—१. गांव-गावमें सूत कताई और बुनाई कराना प्रातीय सरकारो और हिंद सरकारकी नीति हो, और इस काममें सरकारी नौकरोसे मदद मिले। २. अपने प्रांत व देशके बड़े नेता इधर अधिक ध्यान देकर इसका काफी प्रचार करें।"

कपड़ोंकी कमी पूरी करनेके लिए ये शर्तें आसान लगनी चाहिए। दोनों शर्तोका पालन काग्रेसी हुकूमतका धर्म है। जितनी ढिलाई है, सब धर्म-पालनकी कमी साबित करती है। ढिलाई आई है, इसमें शक नही है। उसे मिटानेका आज सबसे अच्छा मौका है; क्योकि कपड़ोंके दाम बहुत बढ़ गए हैं। इसका सबब हमारी नादानी ही है। अब यह कैसे मिटें? जिनका खादीमें अटल विश्वास है, उनके व्यवहारसे, उनकी बुद्धिके तेजसे और तजरबेसे। जब हुकूमतकी नीति खादीके अनुकूल होगी तब कपड़े आदिपर अंकुशकी बात अपने आप छूट जायगी। इस बीच आज कपड़ोंपर जो अंकुश है, वह गरीबोंके हितमें जल्द-से-जल्द जाना चाहिए।

नई दिल्ली, ५–१–'४८

: ६० :

उर्दू लिपिका महत्त्व

करीब दो हफ्ते हुए, मैंने 'हरिजन बधु' मे इशारा किया था कि बिक्री कम हो रही है, इसलिए उर्दू 'हरिजन' शायद बंद करना पडेगा। घाटेका सवाल छोड दे तो भी जब मांग नही तब उसे छापनेमे कोई अर्थ नही। बिक्रीका गिरना मेरे लिए तो इस बातकी निशानी है कि लोगोंको यह चीज पसंद नहीं है। लोग इससे नाराज हैं। अगर मैं इस चीजकी तरफ ध्यान न दूं तो मेरी मूर्खता होगी।

मेरे विचार बदल नही सकते, खासकर हमारे इतिहासके इस अनोखे मौकेपर। मैं मानता हूं कि खास सिद्धांतका सवाल न हो तो मुसलमानों या किसी दूसरेको दु.ख देनेवाली कोई बात करना गलती है। जो नागरी लिपिके अलावा उर्दूलिपि सीखनेकी तकलीफ उठाएंगे, उन्हें कोई नुकसान पहुंचनेवाला नही। उन्हे यह फायदा होगा कि वे उर्दू भी सीख जायंगे। हमारे देशमे बहुतसे लोग उर्दू जानते है। अगर आज हमारी विचारधारा टेढ़ी न चलती तो यह सीधी-सादी बात समझनेके लिए किसी दलीलकी जरूरत ही न थी। उर्दूलिपिमे कई कमियां हैं। मगर खूबसूरती और शानमे वह दुनियाकी किसी भी लिपिका मुकाबला कर सकती है। जबतक अरबी-फारसी जिदा है, उर्दूलिपि मर नही सकती, अगरचे उर्दूकी आज अपनी स्वतंत्र हैसियत है और उसे बाहरकी मददकी जरूरत ही नही। थोडी-सी तबदीली करनेसे उर्दूलिपि शार्ट हैंडका

काम दे सकती है। राष्ट्रलिपिके तौरपर अगर पुराने बंधन निकाल दिए जाय तो उर्दूलिपिमे ऐसा फेरफार किया जा सकता है कि विना किसी तकलीफके उसमे सस्कृतके श्लोक लिखे जा सके।

आखिरमे मुझे यह कहना है कि जो लोग गुस्सेमें आकर उर्दूलिपिका वहिष्कार करते है, वे यूनियनके मुसलमानोंकी खामखाह वेअदवी करते है। उनकी आंखोमे ये मुसलमान आज अपने देशमे परदेशी हो गए है। यह तो पाकिस्तानके वुरे तरीकोंकी नकल करना हुआ और वह भी वढा-चढ़ाकर। मेरी हर एक हिंदुस्तानीसे यह मांग है कि वह पाकिस्तानकी बुराईकी नकल करनेसे इन्कार करे। अगर मैंने जो लिखा है, उसे वे पूरी तरह समझेंगे तो हिंदी और उर्दू 'हरिजन' को बंद होनेसे बचा लेगे। क्या मुसलमान भाई इस मौकेपर पूरे उतरेगे ? उन्हे दो चीजे करनी है। उर्दू 'हरिजन' खरीदना और मेहनतसे नागरी लिपि सीखकर अपने दिल और दिमागको फायदा पहुंचाना।

नई दिल्ली, ११-१-'४८

: ६१

लोकशाही कैसे काम करती है ?

एक माने हुए दोस्तने मुझे दो खत लिखे है। एकमें मुझे विना सोचे-समझे चीजोपरसे अंकुश हटानेके वुरे नतीजोके

बारेमें मौकेकी चेतावनी दी है और दूसरेमे हिंदू-मुस्लिम-दंगोंके फूट पड़नेकी सभावना बताई है। मैंने एक खतमे उनके दोनो खतोंका जवाब दिया है, जो अचानक वाद-विवादका विषय बन गया है और लोकशाहीके बारेमें मेरी राय जाहिर करता है, जो आम जनताके अहिसक कामसे ही कायम हो सकती है। इसलिए मै वह खत नीचे देता हूं। यहा मै वे दो खत नही दे रहा हूं, जिनके जवाबमे मैंने नीचेका खत लिखा है। मेरे जवाबमे ऐसी काफी बाते है, जिनसे पढनेवाले उन दो खतोंका आशय जान सकेंगे। मैंने यहां जान-बूझकर खत लिखने-वाले भाईका और जगहका नाम नही दिया है, इसलिए नहीं कि वे खत निजी या गुप्त रखने लायक है, बल्कि इसलिए कि दोनोंको जाहिर करनेसे कोई लाभ नही होगा।

"आप अभी भी इस तरह लिखते है मानो आप गुलाम हों, हालांकि हमारी गुलामी अब खतम हो गई है। अगर आपके कहनेके मुताबिक अंकुश हटनेका बुरा नतीजा हुआ है तो आपको उसके खिलाफ आवाज उठानी चाहिए; चाहे ऐसा करनेवाले आप अकेले ही क्यों न हों और आपकी आवाज कमजोर ही क्यो न हो। सच पूछा जाय तो आपके बहुतसे साथी है और आपकी आवाज भी किसी तरह कमजोर नहीं है, बशर्ते कि सत्ताके नशेने उसे कमजोर न बना दिया हो। अंकुश हटनेसे ऊंचे चढ़नेवाले दामोंका भूत मुझे तो व्यक्तिगत रूपसे नहीं डराता। अगर हमारे बीच बहुतसे धोखेबाज लोग हैं और हम उनका मुकाबला करना नहीं जानते तो हम उनके द्वारा खा लिए जाने लायक हैं। वे हमें जरूर खा जायंगे। तब हम मुसी-बतोंका बहादुरीसे सामना करना जानेंगे। सच्ची लोकशाही लोग किताबों-से या नामसे सरकार कहे जानेवाले लेकिन असलमें अपने सच्चे सेवकोंसे नहीं सीखते। कठिन अनुभव ही लोकशाहीका सबसे अच्छा शिक्षक होता

है। मुझसे अपील करनेके दिन अब चले गए। ब्रिटिश हुकूमतके दिनोंमें हमने अहिंसाका जो जामा पहन रखा था, उसकी अब जरूरत नहीं रही। इसलिए हमें इतनी भयानक हिंसाका सामना करना पड़ रहा है। क्या आप भी उसके सामने झुक गए या आपमें भी कभी अहिंसा थी ही नहीं ? यह खत मैं इस चेतावनीके लिए नहीं लिख रहा हूं कि आप मुझे लिखकर तसवीरका अपना पहलू न बतावें; लेकिन इसका मकसद आपको यह बताना है कि मेरी अकेली आवाज सुनाई दे तो भी मैं अंकुश हटानेकी बातपर क्यों जोर देता रहूंगा।

"आपका हिंदू-मुस्लिम तंगदिलीके बारेमें लिखा खत पहले खतसे ज्यादा प्रासंगिक है। इस बारेमें भी आपको स्थितिका नरमीसे सामना करने या सस्ते आत्म-संतोषके खिलाफ खुले आम अपनी आवाज उठानी चाहिए। मैं अपना काम तो करूंगा ही, लेकिन मैं दुःखके साथ अपनी सीमाओंको मानता हूं। पहले मैं जिधर देखता था, उधर मेरा राज चलता था। आज मेरे कई साथी सत्ताधीश हो गए है। वह समय नहीं कि मैं अभी भी अपनेको राजा मान सकूं। अगर मैं ऐसा कर सकूं तो भी मैं उन सबसे छोटी सत्तावाला हूं। लोकशाहीके शुरुआतके दिन बेसुरे रागोकी तरह होते है, जो कानोको बुरे मालूम होते है और सिरदर्द पैदा करते है। अगर लोकशाहीको इन खा जानेवाले बेसुरे रागोके बावजूद जिंदा रहना है तो बाहरसे बेसुरे मालूम होनेवाले कोलाहलके इस जरूरी अनुभवमेंसे सुंदर सुर और सुमेल पैदा करना ही होगा। मेरी बड़ी इच्छा है कि आप उन महान् पुरुषोंमेंसे एक हो, जो इस बेसुरे कोलाहलमेंसे सुमेलवाले सुंदर संगीतको जन्म देनेमें हाथ बटाएगे।

"आप यह सोचनेकी गलती नहीं करेंगे कि अपने प्रदेशकी हालतका मुझे ज्ञान कराकर आपका अपना फर्ज खतम हो जाता है।"

नई दिल्ली, ११-१-'४८

: ६२ :

स्वर्गीय तोताराम सनाढ्य

वयोवृद्ध तोतारामजी किसीकी सेवा लिए बगैर गए। वे साबरमती आश्रमके भूषण थे। वे विद्वान् नहीं थे, मगर ज्ञानी थे। भजनोके भंडार होते हुए भी वे गायनाचार्य न थे। वे अपने एकतारेसे और भजनोसे आश्रमके लोगोको मुग्ध कर देते थे, जैसे वे थे, वैसे ही उनकी पत्नी थी। वह तो तोताराम-जीसे पहले ही चली गई।

जहां बहुतसे आदमी एक साथ रहते हों, वहा कई प्रकारके झगडे होते ही है। मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही है कि जब तोतारामजी या उनकी पत्नीने उनमें भाग लिया हो, या किसी झगड़ेके कभी कारण बने हों। तोतारामजीको धरती प्यारी थी। खेती उनका प्राण थी। आश्रममें वर्षो पहले वे आए और उसे कभी नही छोड़ा। छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष उनकी रहनुमाईके भूखे रहते और उनके पाससे अचूक आश्वासन पाते।

वे पक्के हिंदू थे। मगर उनके मनमें हिंदू, मुसलमान और दूसरे सब धर्म बराबर थे। उनमे छुआछूतकी गध न थी। किसी किस्मका व्यसन न था।

राजनीतिमे उन्होंने भाग नहीं लिया था, फिर भी उनका देशप्रेम इतना उज्ज्वल था कि वह किसीके भी मुकाबले खडा रह सकता था। त्याग उनमे स्वाभाविक था। उसे वे सुशोभित करते थे।

ये सज्जन फिजी द्वीपमे गिरमिटिए मजदूरकी तरह गए

थे और दीनबन्धु एड्रूज उन्हे ढूढ लाये थे। उन्हे आश्रममे लानेका यश श्री बनारसीदास चतुर्वेदीको है।

उनकी अतिम घड़ीतक उनकी जो कुछ सेवा हो सकती थी, वह भाई गुलाम रसूल कुरैशीकी पत्नी और इमाम साहबकी लड़की अमीनाबहनने की थी।

''परोपकाराय सतां विभूतय' (सज्जनपुरुष परोपकारके लिए ही जीते है) यह उक्ति तोतारामजीके बारेमे अक्षरश: सच थी।
नई दिल्ली, १२–१–'४८

: ६३ :

घुड़दौड़ और बाजी बदना

घुड़दौड़के मैदानपर बाजी बदनेके सिलसिलेमें मद्रासससे एक संवाददाताका दु:खद पत्र आया है। वे लिखते है कि ये दोनों काम साथ-साथ चलते है। बाजी बदनेका काम चल पड़ता है तो घुडदौड़ बहुधा बंद हो जाती है। घुडदौडकी खातिर घोड़ोंकी रखवालीके लिए यह प्रथा एकदम अनावश्यक है। वहां जानेवाले लोग मनुष्यताकी बुराइयोको पकड लेते है और अपना पैसा तथा बहुत-सी जमीन बरबाद करते है। घुडदौड़ी जुएके शौकीन अच्छे लोगोंकी बरबादी मेरी ही तरह किसने नही देखी है? यही वक्त है जब कि हम पश्चिमके दोषोसे मुक्ति पाकर वहांकी सर्वोत्तम देने अपना ले।
नई दिल्ली, १२–१–'४८

: ६४ :

गुजरातके भाई-बहनोंसे

यह खत मैं बुधवारके बड़े सवेरे बिस्तरपर पड़ा-पड़ा लिखवा रहा हूं। आज उपवासका दूसरा दिन शुरू हुआ है। फिर भी अभी उसे शुरू हुए २४ घंटे नही हुए हैं। 'हरिजन' की डाक जानेका यह आखिरी दिन है। इसलिए गुजरातियोंको दो शब्द भेजना मैं ठीक समझता हूं।

इस उपवासको मैं जैसा-तैसा नहीं मानता। मैंने बहुत विचारपूर्वक इसे शुरू किया है। फिर भी विचार उसका प्रेरक नही; बल्कि विचारका स्वामी राम या रहमान उसका प्रेरक है। यह उपवास किसीके सामने नही, या सबके सामने है। इसके पीछे न तो किसी तरहका गुस्सा है और न थोड़ी भी जल्दबाजी। हर बातके करनेका अवसर होता है। वह अवसर चूक जानेके बाद उसे करनेमे क्या फायदा? इसलिए अब विचारनेकी यही बात रही कि हरएक हिंदुस्तानीके लिए कुछ करना रहा या नहीं? हिंदुस्तानी कहनेमें गुजराती लोग शामिल हैं। और चूंकि यह खत गुजराती भाषामे लिखवाया जा रहा है, इसलिए यह गुजराती बोलनेवाले हर हिंदुस्तानीके लिए है।

दिल्ली हिंदुस्तानकी राजधानी है। अगर हम मनसे हिंदुस्तानके दो विभाग न मानें, यानी हिंदू-मुसलमान दो न मानें, तो हिंदुस्तानका जो नकशा हम अभीतक जानते आए हैं, उस हिंदुस्तानकी राजधानी दिल्ली आज नही बनी है, हालांकि वह हमेशासे सारे हिंदुस्तानकी राजधानी रही है।

हस्तिनापुर भी वही थी और इंद्रप्रस्थ भी वही। उनके खंडहर आज भी पड़े है। यह दिल्ली तो हिंदुस्तानका हृदय है। ऐसा कहनेमे जरा भी अतिशयोक्ति नही है कि उसे सिर्फ हिंदुओं या सिक्खोकी मानना मूर्खताकी सीमा है। यह बात भले कठोर मालूम हो, फिर भी यह शुद्ध सत्य है। इस दिल्ली-पर कन्याकुमारीसे लेकर काश्मीर तक और करांचीसे लेकर आसामके डिब्रुगढतक रहनेवाले और इस प्रदेशको सेवाभाव और प्रेमभावसे अपना बनानेवाले सारे हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी और यहूदियोंका हक है। इसमे बहुमत-वालोंके लिए ही जगह है या अल्पमतवालोकी अवगणना है, ऐसा कहा ही नही जा सकता। जो उसका शुद्धतम सेवक है वही बड़े-से-बड़ा हकदार है। इससे मुसलमानोंको निकाल बाहर करनेवाला शख्स इस दिल्लीका पहले नंबरका दुश्मन है और इससे वह हिंदुस्तानका दुश्मन है। इस अवसरके पास हम आ रहे है। हरएक हिंदुस्तानीको इस कुअवसरको टालनेमें हिस्सा लेना चाहिए। यह हिस्सा किस तरह लिया जा सकता है? अगर हम पचायती राज चाहते है, लोकशाही तंत्र कायम करनेका इरादा रखते है, तो छोटे-से-छोटा हिंदुस्तानी बड़े-से-बड़े हिंदुस्तानीके बराबर ही हिंदुस्तानका राजा है। इसके लिए उसे शुद्ध होना चाहिए। न हो तो बनना चाहिए। वह जैसा शुद्ध हो वैसा ही समझदार हो। इससे वह जातिभेद, वर्णभेदको नही मानेगा। सबको अपने समान समझेगा। दूसरोको अपने प्रेमपाशमे बांधेगा। उसके लिए कोई अछूत नही होगा। उसी तरह मजदूर और महाजन दोनो उसके

लिए बराबर होंगे। इससे वह करोड़ों मजदूरोकी तरह पसीनेकी रोटी कमाएगा और कलम और कड़छीको एक-सा समझेगा। इस शुभ अवसरको नजदीक लानेके लिए वह खुद भंगी बन जायगा। वह समझदार होगा, इसलिए अफीम या शराबको छुएगा ही क्यों? स्वभावसे ही वह स्वदेशी-व्रत पालेगा। अपनी पत्नीको छोड़कर वह सभी स्त्रियोंको उम्रके मुताबिक मां, बहन या लड़की मानेगा। किसीपर बुरी नजर नही डालेगा। मनमे भी दूसरी भावना नही रखेगा। जो हक उसका है, वही अपनी स्त्रीका समझेगा। वक्त आनेपर खुद मरेगा, दूसरेको कभी नही मारेगा और बहादुर ऐसा होगा कि गुरुओंके सिक्खोंकी तरह अकेला सवालाखके सामने अड़ा रहेगा और एक कदम भी पीछे नही हटेगा। ऐसा हिंदुस्तानी यह नही पूछेगा कि इस यत्नमे मुझे कौन-सा पार्ट अदा करना है।

नई दिल्ली, १४-१-'४८

: ९५ :

क्रोध नहीं, मोह नहीं

एक भाई लिखते है—

"उर्दू 'हरिजन'के बारेमें आपका लेख देखा। यदि वह आपका लिखा न होता तो मैं यही समझता कि किसीने बहुत ही क्रोधमें लिखा है। जीवणजीभाईने जो कुछ लिखा है, उससे सिर्फ यही साबित होता

है कि लोगोंको उर्दूलिपिमें 'हरिजन'की जरूरत नहीं है। पर आप उसके कारण नागरी 'हरिजनसेवक'को क्यों बंद करें? क्या आप समझते हैं कि पहले हिंदी 'नवजीवन' निकालते थे (उर्दू नहीं) तब कोई गुनाह करते थे? उसके बाद भी नागरी 'हरिजनसेवक' निकलता रहा, पर आपने उर्दू 'हरिजन' उस समय नहीं निकाला।

"अगर आपने उर्दू और नागरी 'हरिजन' केवल हिंदुस्तानीका प्रचार करनेके लिए निकाले होते तो बात ठीक थी, पर नागरी 'हरिजनसेवक' पहलेसे ही निकल रहा है। उसमें घाटा हो तो आप भले ही बंद करें। आपने जो चेतावनी नागरी 'हरिजनसेवक' बंद करनेकी दी है, उसमें मुझे एक प्रकारका बलात्कार लगता है।

"क्या अंग्रेजी 'हरिजन'से भी ज्यादा नागरी 'हरिजनसेवक'ने गुनाह किया है? सच बात तो यह है कि पहले अंग्रेजीका 'हरिजन' बंद हो जाना चाहिए। पर होता यह है कि अंग्रेजी 'हरिजन'को जितना महत्त्व मिलता है, उतना दूसरे संस्करणोंको नहीं।

"यह कितने बड़े दुःखकी बात है कि आप अपने प्रार्थना-प्रवचन हिंदुस्तानीमें देते हैं। उसका सारांश आपके दफ्तरमें अंग्रेजीमें होता रहा है और फिर उसका उल्था नागरी और उर्दू 'हरिजन'में छपता था, यह कहकर कि 'अंग्रेजीसे'। अब तो यह नहीं लिखा रहता। शायद अब सीधा हिंदुस्तानीमें ही लिखा जाता हो।

"आपने कई वर्ष पहले लिखा था कि जहांतक संभव होगा, आप केवल गुजराती या हिंदुस्तानीमें ही लिखेंगे और उसका उल्था अंग्रेजीमें आवेगा। पहले ऐसा चला भी, लेकिन बादमें यह सिलसिला शिथिल हो गया।

"मैं फिर आपसे अनुरोध करता हूं कि आप अंग्रेजी 'हरिजन' बंद कर दें और दूसरे संस्करण जारी रखें।"

जो बात वाकई सही है, वह अगर कही जाय तो उसे क्रोध मानना शब्दका सही प्रयोग नही होगा। क्रोधमें आदमी बेतुका काम कर लेता है। अगर 'उर्दू हरिजन' बद करना पड़ा तो साथ-साथ नागरी भी बंद करना आवश्यक हो जाता है। आवश्यक बात करनेमें क्रोध कैसा? जिसे मैं आवश्यक समझूं, उसे दूसरे न भी समझें, जैसे कि इस पत्रके लेखक, उससे मुझे क्या? हम जिसे लाजमी मानें, वही सारा जगत भी माने, ऐसा हो तो अच्छा है; लेकिन ऐसा होता नहीं है। हर चीजके कम-से-कम दो पहलू होते ही है।

अब यह बताना बाकी रहा कि एकको छोड़ूँ या दोनोको। यह ठीक है कि जब मैंने नागरीमें 'नवजीवन' निकाला और 'हरिजन' निकालना शुरू किया तब दोनों लिपिकी चर्चा नहीं थी। अगर थी तो मुझे उसका पता नही था।

बीचमें स्व० भाई जमनालालजीकी इच्छासे हिंदुस्तानी प्रचार-सभा कायम हुई। इससे उर्दू रिसाला निकालना लाजमी हो गया। अब माना कि उर्दू रिसाला बंद हो और नागरी निकलता रहे तो यह मेरी निगाहमे बड़ा ही अनुचित होगा; क्योंकि हिंदुस्तानी प्रचार-सभाकी हिंदुस्तानीके मानी यह है कि वह जैसी नागरी लिपिमें लिखी जाती है, वैसी ही उर्दूलिपिमे भी लिखी जा सकती है।

इसलिए जो अखबार दोनों लिपिमे निकलता था, उसे ऐसे ही निकलना चाहिए, वह भी एक ऐसे मौकेपर जब कि हिंदके लोग चारों ओरसे कह रहे है कि राष्ट्रभाषा हिंदी ही है और वह नागरी लिपिमे ही लिखी जाए। यह विचार

ठीक नही है, यह बताना मेरा काम हो जाता है। यह दलील अगर ठीक है तो मेरा कर्त्तव्य हो जाता है कि मै नागरी लिपिके साथ उर्दूलिपिको भी रखू और न रख सकू तो मुझे उर्दू 'हरिजनसेवक' के साथ नागरी 'हरिजनसेवक' का भी त्याग करना चाहिए।

लिपियोमे मैं सबसे आला दर्जेकी लिपि नागरीको ही मानता हू। यह कोई छिपी बात नही है, यहातक कि मैने दक्षिण अफ्रीकासे गुजराती लिपिके बदलेमे नागरी लिपिमे गुजराती खत लिखना शुरू किया था। इसे मै समय न मिलनेके कारण आजतक पूरा न कर सका। नागरी लिपिमे भी सुधारके लिए गुंजाइश है, जैसे कि करीब-करीब सब लिपियोमे है। लेकिन यह दूसरा विषय हो जाता है। यह इशारा जो मैने किया है सो यह बतानेके लिए कि नागरी लिपिका विरोध मेरे मनमे जरा भी नही है। लेकिन जब नागरीके पक्षपाती उर्दूलिपिका विरोध करते है तब उसमे मुझे द्वेषकी और असहिष्णुताकी बू आती है। विरोधियोंमे इतना भी आत्मविश्वास नहीं है कि नागरी लिपि यदि संपूर्ण है—दूसरी लिपियोके मुकाबलेमे पूर्ण है—तो उसीका साम्राज्य अंतमे होगा। इस निगाहसे देखा जाय तो मेरा फैसला निर्दोष लगना चाहिए और जरूरी भी।

हिंदुस्तानीके बारेमे मेरा पक्षपात है जरूर। मै मानता हूं कि नागरी और उर्दूलिपिके बीच अंतमे जीत नागरी लिपिकी ही होगी। इसी तरह लिपिका ख्याल छोड़कर भाषाका ही ख्याल करे तो जीत हिंदुस्तानीकी ही होगी;

क्योंकि संस्कृतमयी हिंदी बिलकुल बनावटी है और हिंदुस्तानी बिलकुल स्वाभाविक। उसी तरह फारसीमयी उर्दू अस्वाभाविक और बनावटी है। मेरी हिंदुस्तानीमें फारसी शब्द बहुत कम आते हैं तो भी मेरे मुसलमान दोस्तो और पजाबी और उत्तरके हिंदुओनें मुझे सुनाया है कि मेरी हिंदुस्तानी समझनेंमें उनको दिक्कत नही होती। हिंदीके पक्षमे मै तो बहुत कम दलील पाता हूं। खूबी यह है कि पहलेपहल जब हिंदी-साहित्य-सम्मेलनमे मैंने हिंदीकी व्याख्या दी तब उसका विरोध नहीके बराबर था। विरोध कैसे शुरु हुआ इसका इतिहास बड़ा करुणाजनक है। मै उसे याद भी नहीं रखना चाहता। मैंने यहांतक बताया था कि 'हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' नाम ही राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिए सूचक नही था, न आज भी है।

लेकिन मै साहित्यके प्रचारकी दृष्टिसे सदर नही बना था। स्व० भाई जमनालालजी और दूसरे अनेक मित्रोने मुझे बताया था कि नाम चाहे कुछ भी हो, उन लोगोका मन साहित्यमें नही था, उनका दिल राष्ट्रभाषामे ही था और इसलिए मैंने दक्षिणमे राष्ट्रभाषाका प्रचार बड़े जोरोंसे किया।

प्रातःकालमें उपवासके छठे दिन प्रार्थनाके बाद लेटे-लेटे मैं यह लिखा रहा हूं। कितने ही दुःखदायी स्मरण ताजा होते हैं, पर उन्हें और बढ़ाना मुझे अच्छा नही लगता है।

नामका झगड़ा मुझे बिलकुल पसंद नही है। नाम कुछ भी हो; लेकिन काम ऐसा हो कि जिससे सारे राष्ट्रका कल्याण हो। उसमें किसी भी नामका द्वेष होना ही नही चाहिए।

"सारे जहांसे अच्छा हिंदोस्तां हमारा,"—इकबालके इस वचनको सुनकर किस हिंदुस्तानीका दिल नही उछलेगा ? अगर न उछले तो मै उसे कमनसीब समझूगा। इकबालके इस वचनको मै हिंदी कहूं, हिंदुस्तानी कहू, या उर्दू ? कौन कह सकता है कि इसमे राष्ट्रभाषा नही भरी है, इसमे मिठास नही है, विचारकी बुजुर्गी नही है ? भले ही इस विचारके साथ आज मै अकेला होऊं, यह साफ है कि जीत कभी संस्कृतमयी हिंदीकी होनेवाली नही है, न फारसीमयी उर्दूकी। जीत तो हिंदुस्तानीकी ही हो सकती है। जब हम अंदरूनी द्वेषभावको भूलेंगे तब हम इस बनावटी झगड़ेको भूल जायंगे, उससे शरमिंदा होगे।

अब रही अंग्रेजी 'हरिजन'की बात। इसे मै छोटी बात मानता हूं। अग्रेजी 'हरिजन'को मै छोड नही सकता, क्योकि अंग्रेज लोग और अंग्रेजीके विद्वान हिंदुस्तानी लोग मानते है कि मेरी अंग्रेजीमे कुछ खूबी है। पश्चिमके साथ मेरा सबंध भी बढ़ रहा है। मुझमे अग्रेजोंका या दूसरे पश्चिमी लोगोंका द्वेष न कभी था, न आज है। उनका कल्याण मुझे उतना ही प्रिय है जितना कि हमारे देशका। इसलिए मेरे छोटेसे ज्ञान-भंडारमेसे अंग्रेजी भाषाका बहिष्कार कभी नही होगा। मै उस भाषाको भूलना नही चाहता, न चाहता हूं कि सारे हिंदुस्तानी अंग्रेजी भाषाको छोड़ें या भूलें। मेरा आग्रह हमेशा अंग्रेजीको उसकी योग्य जगहसे बाहर न ले जानेका रहा है। वह कभी राष्ट्रभाषा नही बन सकती और न हमारी तालीमका जरिया। ऐसा करके हमने

अपनी भाषाओंको कंगाल बना रखा है। विद्यार्थियोंपर हमने बड़ा बोझ डाला है। यह करुण दृश्य, जहांतक मुझे इल्म है, सिर्फ हिंदुस्तानमें ही देखा जाता है। इस भाषाकी गुलामीने हमारे करोड़ों लोगोंको बहुतेरे ज्ञानसे बरसोंतक वंचित रखा है। इसकी हमें न समझ है, न शरम, न पछतावा! यह कैसी बात? यह सब साफ-साफ जानते हुए भी मै अंग्रेजी भाषाका बहिष्कार नही सह सकता। जैसे तामिल आदि सूबाई भाषाएं हैं और हिंदुस्तानी राष्ट्रभाषा, ठीक इसी तरह अंग्रेजी विश्वभाषा है—जगतकी भाषा है, इससे कौन इन्कार कर सकता है? अंग्रेजोंका साम्राज्य जायगा, क्योंकि वह दूषित था और है; लेकिन अंग्रेजी भाषाका साम्राज्य कभी नही जा सकता।

मुझे ऐसा लगता है कि गुजराती भाषामें या अंग्रेजी भाषामें मैं कुछ भी लिखूं तो भी अंग्रेजी 'हरिजन' और गुजराती 'हरिजन-बंधु' अपने पैरोंपर खड़े रहेंगे।

नई दिल्ली, १८–१–'४८
सुबह ५ बजकर ४५ मिनिट

: ६६ :

विचारने लायक

एक नौजवान भाई लिखते हैं:

"आज दोपहरको मुझे मालूम हुआ कि आपने उपवास शुरू किया

हूं। उपवासके बीच आपको तकलीफ देनेकी इच्छा नहीं हो सकती, लेकिन आज तो लिखे बिना रहा नहीं जाता।

"१. आपके उपवासके पांच-सात दिनमें हिंदू-मुसलमानोंके बीच दिली एकता कायम होना संभव नहीं है। हां, ऐसी एकता पैदा हुई है, यह बतानेवाले जुलूसों और सभाओंका प्रदर्शन खूब होगा। ऐसा होना ठीक भी है; लेकिन यह सब दिली एकताका सबूत नहीं होगा। इसलिए अगर आपका उपवास छूटे तो आप इस भुलावेमें न रहें कि हिंदू-मुसलमानोंके बीच दिली एकता पैदा हो गई है। कलकत्तेकी शांतिको मैं दिली एकता नहीं मानता; लेकिन आपके उपवाससे यह हो सकता है कि हिंदू अपने गुस्सेको जरा काबूमें रखकर निर्दोष मुसलमानोंको कतल न करें। मैं मानता हूं कि आपका उपवास छूटनेके लिए इतना काफी होगा।

"२. आपने अपनी तपस्यासे लोगोंके दिलोंमें अनोखा स्थान पा लिया है; लेकिन दूसरी तरफ लोगोंमें यह ज्ञान प्रकट नहीं हुआ है कि शरीर मरे तो कोई चिंता नहीं, आत्मा तो अमर है। इस कारणसे लोग आपके शरीरको कमजोर और क्षीण होते देखनेके लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए आपके शरीरको बचानेके लिए लोग अपना गुस्सा और नफरत दबा देंगे। लेकिन दबा हुआ गुस्सा मौका मिलते ही फूट पड़नेवाला है। मुझे लगता है कि इसी विचारके बाद आपने देशके सामने हिंदके टुकड़े करनेके बजाय घरेलू लड़ाई पसंद करनेकी सूचना रखी होगी।

"३. अगर लोगोंके दिलोंमेंसे वैर और गुस्सा निकालना हो तो सरकारको चाहिए कि वह लोगोंको अपना जीवन रचनात्मक कार्यक्रमके ऊपर ही रचना सिखावे; लेकिन आज तो मैं अखबारोंमें देखता हूं कि थोड़े ही समयमें ६०० विदेशी ट्रैक्टर और ६००० टन या इससे ज्यादा एमो-नियम सल्फेटकी खाद देशमें आनेवाली है। देशकी रक्षाके लिए देशमें उद्योग-धंधे और कारखाने खोलनेकी बातें भले हों; लेकिन जीवनको

१५

दो खास जरूरतों—खुराक और कपड़े—पर केंद्रीय उत्पादनका उसूल किसलिए लागू किया जाता है ? यह समझमें नहीं आता। जब अमेरिकाके लोग कुदरती खादकी तरफ जा रहे हैं तब हम रासायनिक खादकी शुरुआत कर रहे हैं।

"४. मैं यह अपने अनुभवसे कहता हूं कि हिंदके मुसलमान आपको जितने निर्दोष दीखते हैं, उतने वे सचमुच हैं नहीं। और दिल्लीके मुसलमान आपको अपनी करुणाजनक हालत बतावें तो उससे आप यह न समझें कि हिंदके सारे मुसलमान या उनका बड़ा हिस्सा भी निर्दोष है और करुणा-जनक हालतमें जीता है। इससे उलटे, मुसलमानोंका बहुत बड़ा हिस्सा यह आशा करके बैठा है कि कब पाकिस्तान हिंदपर चढ़ाई करे और हम उसमें हिस्सा लें। ऐसे आदमियोंमें मैं गांवोंके अज्ञान आदमियोंकी कल्पना नहीं करता। फिर भी ये लोग आगमें सूखी लकड़ीका काम जरूर करेंगे। इसलिए मैं तो यह मानता हूं कि पाकिस्तान आज जो अपनी मर्यादा नहीं समझता, इसका कारण यह है कि उसे पूरा विश्वास है कि हिंदके मुसलमान उसीके हैं और वे आपकी हस्तीका पूरा लाभ उठाएंगे। और इसके पीछे भी स्वार्थी राष्ट्रोंकी मदद है, यह तो मैं मानता ही हूं।

"५. इन सब विचारोंको देखते हुए मैं यह मानता हूं कि आपका उपवास हिंदुओंसे थोड़ा संयम रखनेकी ही अपेक्षा रखता है।

"६. मैं मानता हूं कि हिंदू-मुसलमानोंका झगड़ा दो तरहसे ही शांत हो सकता है। एक तो हिंदू अगर शुद्ध हृदयके बन जायं तो—इस आशाको तो कबसे ही निष्फल हुई समझना चाहिए। आपने ही कहा है कि आजतककी कांग्रेसकी लड़ाई कमजोरोंकी अहिंसा थी, यानी जब सत्ता हाथमें आ गई है तब यह संस्था दूने जोरसे हिंसाके रास्ते ही जायगी। मौजूदा कांग्रेसी सरकारोंके लक्षण देखते हुए यह बात साबित हो सकती है। दूसरा रास्ता यही है कि हिंद-सरकार दृढ़तासे काम ले। मुझे लगता

है कि अभी वह ऐसा नहीं करती। और जिस हदतक आपके असरके परिणाम-स्वरूप इसमें ढिलाई है, उस हदतक देशका नुकसान है।"

ऊपरका खत विचारने लायक होनेके कारण यहा दिया गया है। क्षणभरमे हृदय-परिवर्त्तन होनेके उदाहरण मिल सकते है। यह कहना ज्यादा मौजू है कि ऐसे परिवर्त्तन टिक नही सकते। उपवास छुट गया, अब यह देखना बाकी है कि इसका टिकाऊ परिणाम क्या आता है। इतना कहकर मैं ऊपरके खतमे लिखी बातोकी कीमत कम करना नही चाहता। हिंदू, सिक्ख, मुसलमान सब उसमेंसे सबक ले सकते हैं। सांप्रदायिक मेल-जोल कोई नई बात नही है। इसकी कोशिश हमेशा चलती रही है। हिंदुस्तानकी आजादीका यह एक स्तभ है। यह न हो तो आजादी टिक नही सकती। इसे स्वयं-सिद्ध बात मानना चाहिए। बीचका जो समय बीता (अगर बीत गया हो तो) वह हमारी बेहोशीका समय माना जा सकता है। इसलिए यह आशा रखी जा सकती है कि दिल्लीमे हुई एकता टिकेगी और पक्की साबित होगी।

यह बात याद रखने लायक है कि एकता टिकनेका आधार रचनात्मक कामके ऊपर रहता है। यह किस तरह हो सकता है, इसकी खोज करनी है। इस बातको माननेवाले हरएक सेवकको इसे अपने जीवनमे उतारना चाहिए और अपने पडो-सियोंको समझाना चाहिए। रचनात्मक कामका शास्त्र समझनेसे उसे रुचिकर बनाया जा सकता है। हम रोजाना यह अनुभव करते है कि मशीनकी तरह बिना समझे-बूझे नकल करनेसे यह काम आगे नही बढ़ाया जा सकता।

इस विषयमे मुझे कोई शक नही है कि ट्रैक्टर और रासायनिक खाद नुकसानदेह हैं।

मै यह नहीं मानता कि हिंदुस्तानके सारे मुसलमान निर्दोष है। मै तो यह मानता हूं कि पाकिस्तान बन जानेसे वे यहा ऐसी मुश्किल स्थितिमे पड़ गए है, जिसकी कल्पना भी नही थी। बहुसंख्यकोंको उनके प्रति शुद्ध इन्साफ करना चाहिए। अगर बहुसंख्यक जाति अपनी सत्ताके नशेमे यह माने कि अल्पसख्यकोंको कुचला जा सकता है और वह केवल हिंदू-राज कायम करनेकी बात सोचे तो इसमे मै बहुसख्यकोंका और हिंदू-धर्मका नाश देखता हूं। यह वक्त ऐसा है कि जब शुभ और लगातार कोशिश करनेसे दोनोके दिलमेसे मैल और अज्ञान दूर हो सकते हैं।

पांचवे पैरेकी गुजराती अगर बराबर (?) पढ़नेमे आई हो तो वह कुछ अस्पष्ट मालूम होता है। चाहे जो हो, मेरा उपवास सबकी शुद्धिके लिए था। वह हिंदू, सिक्ख, मुसलमान और दूसरे सब लोगोसे शुद्धिकी अपेक्षा रखता था और रखता है।

छठे पैरेमें सिर्फ बुद्धिवाद है। उसमे हृदयको जगह नही दी गई। जो बात आजादीकी लड़ाईके दरमियान नही हुई, वह अब हो ही नही सकती, ऐसा कोई निश्चयपूर्वक नही कह सकता। अहिंसाका साम्राज्य बतानेका आज सच्चा मौका है। यह सच है कि लोग आम जनताको हथियारबंद करनेके भंवरम फँस गए है। इस भंवरमेसे थोड़े भी बच जायं तो माना जायगा कि वे बहादुरकी अहिंसाके जोरसे बचे है और वे हिंदके सबसे श्रेष्ठ सेवक माने जायंगे। यह बात

बुद्धिसे सावित करके नही बताई जा सकती। इसलिए जब-तक अनुभव न हो तबतक श्रद्धाका ही आसरा लेना होगा। श्रद्धा न हो तो अनुभव कहांसे आवे ?

स्वराजकी सरकारके लिए दृढ़तासे और हिम्मतसे काम लेनेके सिवा दूसरा कोई रास्ता नही है। जो सरकार कमजोर है या किसीसे भी प्रेरित होकर विना समझे काम करती है, वह सरकार हुकूमत करनेके काविल नही है। उसे हटकर दूसरोके लिए जगह खाली करनी चाहिए। मेरे असरके कारण पडित नेहरू या सरदारमे ढिलाई आती है, ऐसा कहनेमे और माननेमें, उनके वारेमें अज्ञान दिखाई पड़ता है। मेरे स्पर्शका अगर यह असर हो तो यह मेरे लिए शर्मकी वात है और देशके लिए यह नुकसानदेह है।

नई दिल्ली, २३–१–'४८

: ६७ :

हरिजन और मंदिर-प्रवेश

एक भाई वढ़वाणसे लिखते हैं :

"हरिजन भाइयोंके मंदिर-प्रवेशके वारेमें आपको समाचार मिलते ही होगे। आजकल हरिजन भाइयोको ट्रस्टियोकी मरजीसे या मरजीके खिलाफ मंदिरोंमें प्रवेश कराया जाता है। मामूली तौरपर अमुक सम्प्रदाय-के मंदिरोमें—जैसे राम-मंदिरों और विष्णु संप्रदायकी हवेलियोमें—प्रवेश करनेका आग्रह रखा जाय तो यह समझमें आने लायक वात है।

लेकिन ऐसे बहुतसे संप्रदाय हैं---जैसे स्वामीनारायण संप्रदाय, जैन संप्रदाय और दूसरे---जिनके धर्मोको हरिजन भाई नहीं मानते। मंदिरोमें प्रवेशके बाद वे उन धर्मोको एकदम मानने लग जायंगे, यह मान लेना बहुत ज्यादा होगा। ऐसे मंदिरोमें हरिजन भाइयोको जबरन प्रवेश करानेसे क्या फायदा होगा, यह समझमें नही आता ?"

दूसरा पत्र अहमदाबादसे आया है। उसमे दस्तखत नही है। आखिरमे लिखा है—"आपके पीड़ित"। अक्षर बहुत अच्छे है। मै जिन हरिजनोको पहचानता हूं, उनकी न तो यह भाषा है और न ये अक्षर। उस पत्रका खास हिस्सा जैसा है वैसा नीचे देता हूं :

"मकरसंक्रांति १४ जनवरीको थी। उस दिन हरिजनोने मदिरमें प्रवेश करनेकी कोशिश की।... सवेरे आठ बजे भजन-मंडलियोके साथ जब स्वामीनारायणके मंदिरमें पहुंचे तो वहां खंभाती ताले लगाए हुए थे।... आज भी वे वहांसे हटे नहीं है।... वे भजन गाया करते है और रात-दिन मदिरके दरवाजेपर सत्याग्रह करके बैठे रहते है।.. कामसे कहीं जाते नहीं.. शहर-समिति हरिजनोके इस कदमकी निंदा करती है।.. यह कैसी विचित्र बात है! आजादीके आनेपर भी हरिजनोको उनके हक न मिलें तो फिर कब मिलेंगे ? शहरके कांग्रेसी लोग आकर ५–१० मिनिट खड़े रहते है और चले जाते है, वे किसी तरहकी कोशिश नहीं करते।... मदद भी नहीं करते। और बेचारे हरिजन सर्दीमें मंदिरके दरवाजेपर बैठकर भजन किया करते है।.. इसका फैसला आखिर कौन करेगा ? यहांके कांग्रेसियोमें कोई चरित्रवाला आदमी नहीं है।.. डाकोरमें तो पूज्य रविशंकर महाराजने अपनी कोशिशसे हरिजनोको दर्शन कराए।...यहां ऐसा कुछ नहीं है तो यह हक हरिजनोको कब मिलेगा ? आप बीचमें पड़ें तो कुछ असर

होगा।.. .आज ३ दिन हुए। बेचारे हरिजन सर्दी और धूपमें बैठे रहते हैं।.. .और हजारोंकी संख्यामें मदिरके दरवाजेपर सत्याग्रह कर रहे हैं।.. .उन्हें कायदेकी शरण नहीं लेनी है और नामधारी सवर्णोंका हृदय कभी पलटनेवाला नहीं।.. .तो आखिर क्या फैसला किया जाय, इस बारेमें आप कुछ रहनुमाई करेंगे?"

पहले पत्रमे लिखनेवाले भाईने मदिरोंके जो अलग-अलग भाग किए है, उसमे मुझे कोई सचाई नही मालूम होती। स्वामी नारायणके मदिर, जैन मदिर वगैरहमे हरएक हिंदू जा सकता है और जाता है। उनमे हरिजनोंको भी जाना चाहिए। यह बात सिद्ध करनेवाली हलचल वरसोसे चलती आई है कि हरिजनो और ब्राह्मणोके एक-से हक है। उसमे बहुत हद-तक सफलता मिली है। अब तो बबई सूबेमे एक कानून बन गया है। इसलिए अब सत्याग्रहका कोई स्थान है, ऐसा मुझे नही लगता। जो कायदा लोकमतके अनुसार होगा, उसे स्वभावसे जनताका आदर मिलेगा। अगर कायदा लोकमतके खिलाफ होगा तो उसका अमल धीरे-धीरे होगा। लोकशाहीमे कायदेका अमल जबरन नही हो सकता। उसमे विवेककी जरूरत हमेशा रहती है। सुधारक समझपूर्वक कायदेकी मदद ले तो वह सफल होता है। अगर वह जल्दबाजी करता है तो कायदा बेकार साबित होता है।

ट्रस्टी मदिरोके मालिक नही होते। मदिरका बनानेवाला भी, जब वह आम जनताके लिए उसे बनाता है, मालिक नही रह जाता। मदिरोंके मालिक उसके पुजारी है। पुजारी वह है, जो उसमें पूजा करने या पूजाका दिखावा करने जाता है।

इस दृष्टिसे जैन-मंदिर, स्वामी नारायण-मंदिर वगैरा हिंदुओंके माने जाते हैं। इन मंदिरोंमें मैं खुद गया हूं। मुझे या मुझ-जैसे सैंकड़ों आदमियोंको कोई पूछता नहीं कि तुम किस जातिके हो। हिंदू-जैसा लगूं, इतना बस है। इसलिए जहां हिंदू जायं, वहां हरिजन भी जायं। हरिजन नामकी कोई अलग जाति आज नही है। वह चार या अठारह वर्णोंमें शामिल है। जाग्रत लोकमत ऐसा कहता है, उसे आदर देनेवाला कानून ऐसा कहता है। उसके खिलाफ जानेवालेका मत आज नही चल सकता। देवमे प्राण डालनेवाले पुजारी होते है। वे अच्छे तो देव अच्छे।

अब दूसरे पत्रको लेता हू। ऊपर कहे मुताबिक मेरा दृढ़ मत होते हुए भी हरिजनोंका आग्रह मेरी समझमें नही आता। जो हठ पकड़कर बैठे हैं, वे सच्चे भक्त नही हैं। उन्हें देव-दर्शनकी नही पड़ी है। वे हकके पीछे दौड़ते है और इसलिए धर्मसे दूर जाते है। वे लिखें, उसपर सही न करे और अपनी तरफसे दूसरेको लिखने दें। सच्चा पुजारी तो भक्त नंदनारका अनुसरण करता है। नंदनारकी पीठपर ईश्वरके सिवा दूसरा कोई नही था। उस नंदनारको आज अपनेको ऊंचा माननेवाले ब्राह्मण भी उत्साहसे पूजते हैं। अपनी इच्छासे हरिजन बना हुआ मैं हरिजनोंमें नदनारको देखनेकी इच्छा रखता हूं। और उसी तरह जन्मसे माने जाने-वाले हरिजन भी इच्छा रखें। अगर गैर-हरिजन हिंदूसमाजको गरज हो तो वह हरिजन-हिंदूको इज्जतके साथ मंदिरमे ले जाय। ऐसा न हो तबतक हरिजन घर बैठे गंगा लावे

और उसमें स्नान करें। उन्हें किसी मंदिरके सामने जाकर फाका करनेकी जरूरत नहीं। इसे मैं अधर्म मानता हूं। जैसे फाकेको हिंदीमें 'धरना देना' कहते हैं, गुजरातीमें इसे लंघन करना या 'त्रागा'[1] कहते हैं। उसमें पुण्य तो नहीं, पाप ही है। ऐसे पापसे सब सौ कोस दूर रहें।

नई दिल्ली, २७-१-'४८

: ६८ :

कांग्रेसका स्थान और काम

कांग्रेस देशकी सबसे पुरानी राष्ट्रीय राजनैतिक संस्था है। उसने कई अहिंसक लड़ाइयोंके बाद आजादी हासिल की है। उसे मरने नहीं दिया जा सकता। उसका खात्मा सिर्फ तभी हो सकता है, जब राष्ट्रका खात्मा हो। एक जीवित संस्था या तो जीवंत प्राणीकी तरह लगातार बढ़ती रहती है, या मर जाती है। कांग्रेसने सियासी आजादी तो हासिल कर ली है, मगर उसे अभी माली आजादी, सामाजिक आजादी और नैतिक आजादी हासिल करनी हैं। ये आजादियां चूंकि रचनात्मक हैं, कम उत्तेजक हैं और भड़कीली नहीं हैं, इसलिए उन्हें हासिल करना राजनैतिक आजादीसे ज्यादा मुश्किल

---

[1] दूसरेको रास्तेपर लानेके लिए अपने ऊपर की जानेवाली जबरदस्ती।

है। जीवनके सारे पहलुओंको अपनेमें समा लेनेवाला रचनात्मक कार्य करोडों जनताके सारे अंगोंकी शक्तिको जगाता है।

कांग्रेसको उसकी आजादीका प्रारंभिक और जरूरी हिस्सा मिल गया है; लेकिन उसकी सबसे कठिन मंजिल आना अभी बाकी है। जनतंत्रात्मक व्यवस्था कायम करनेके अपने मुश्किल मकसदतक पहुंचनेमे उसने अनिवार्य रूपसे दलबंदी करनेवाले गंदे पानीके गडहो-जैसे मंडल खड़े किए है, जिनसे घूसखोरी और बेईमानी फैली है और ऐसी सस्थाए पैदा हुई है, जो नामकी ही लोकप्रिय और प्रजातंत्री है। इन सब बुराइयोके जंगलसे बाहर कैसे निकला जाए ?

कांग्रेसको सबसे पहले अपने सदस्योंके उस विशेष रजिस्टरको अलग हटा देना चाहिए, जिसमे सदस्योंकी तादाद कभी भी एक करोड़से आगे नही बढी और तब भी जिन्हें आसानीसे शनाख्त नही किया जा सकता था। उसके पास ऐसे करोड़ोका एक अज्ञात रजिस्टर था, जो कभी उसके काममे नही आए। अब कांग्रेसका रजिस्टर इतना बड़ा होना चाहिए कि देशके मतदाताओंकी सूचीमें जितने मर्द और औरतोंके नाम है, वे सब उसमे आ जायं। कांग्रेसका काम यह देखना होना चाहिए कि कोई बनावटी नाम उसमे शामिल न हो जाय और कोई जायज नाम छूट न जाय। उसके अपने रजिस्टरमे उन देश-सेवकोंके नाम रहेंगे जो समय-समयपर उनको दिया हुआ काम करते रहेंगे।

देशके दुर्भाग्यसे ऐसे कार्यकर्त्ता फिलहाल खास तौरपर शहरवालोंमेंसे ही लिए जायंगे, जिनमेंसे ज्यादातरको देहातोंके

लिए और देहातोंमे काम करनेकी जरूरत होगी। मगर इस श्रेणीमे ज्यादा-से-ज्यादा तादादमे देहाती लोग ही भर्ती किए जाने चाहिए।

इन सेवकोसे यह अपेक्षा रखी जायगी कि वे अपने-अपने हलकोंमे कानूनके मुताबिक रजिस्टरमे दर्ज किये गए मतदाता-ओंके बीच काम करके उनपर अपना प्रभाव डालेगे और उनकी सेवा करेंगे। कई व्यक्ति और पार्टिया इन मतदाताओको अपने पक्षमे करना चाहेगी। जो सबसे अच्छे होगे उन्हीकी जीत होगी। इसके सिवा और कोई दूसरा रास्ता नही है, जिससे कांग्रेस देशमें, तेजीसे गिरती हुई अपनी अनुपम स्थितिको फिरसे हासिल कर सके। अभी कलतक कांग्रेस बेजाने देशकी सेविका थी। वह खुदाई खिदमतगार थी, भगवानकी सेविका थी। अब वह अपने आपसे और दुनियासे कहे कि वह सिर्फ भगवानकी सेविका है, न इससे ज्यादा, न कम। अगर वह सत्ता हड़पनेके व्यर्थके झगडोमे पडती है तो एक दिन वह देखेगी कि वह कही नही है। भगवानको धन्यवाद है कि अब वह जन-सेवाके क्षेत्रकी एकमात्र स्वामिनी नही रही।

मैने सिर्फ दूरका दृश्य आपके सामने रखा है। अगर मुझे वक्त मिला और स्वास्थ्य ठीक रहा तो मै इन कालमोमे यह चर्चा करनेकी उम्मीद करता हूं कि अपने मालिकोकी, सारे बालिग मर्द और औरतोकी, नजरोंमे अपनेको ऊंचा उठानेके लिए देशसेवक क्या कर सकते है।

नई दिल्ली, २७-१-'४८

: ६६ :

आखिरी वसीयतनामा

देशका बंटवारा होते हुए भी, हिंदकी राष्ट्रीय·कांग्रेस-द्वारा तैयार किए गए साधनोंके जरिए हिंदुस्तानको आजादी मिलनेके कारण मौजूदा स्वरूपवाली कांग्रेसका काम अव खत्म हुआ—यानी प्रचारके वाहन और धारासभाकी प्रवृत्ति चलानेवाले तंत्रके नाते उसकी उपयोगिता अव समाप्त हो गई है। शहरों और कसबोंसे भिन्न उसके सात लाख गांवोंकी दृष्टिसे हिंदुस्तानकी सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना अभी वाकी है। लोकशाहीके ध्येयकी तरफ हिंदुस्तानकी प्रगतिके दरमियान फौजी सत्तापर मुल्ककी सत्ताको प्रधानता देनेकी लड़ाई अनिवार्य है। कांग्रेसको हमें राजनैतिक पार्टियों और सांप्रदायिक संस्थाओंके साथकी गंदी होड़से बचाना चाहिए। इन और ऐसे ही दूसरे कारणोंसे अखिल भारत कांग्रेस कमेटी नीचे दिए हुए नियमोंके मुताबिक अपनी मौजूदा संस्थाको तोड़ने और 'लोक-सेवक-संघ'के रूपमें प्रकट होनेका निश्चय करे। जरूरतके मुताबिक इन नियमोंमें फेरफार करनेका इस संघको अधिकार रहेगा।

गांववाले या गांववालो-जैसी मनोवृत्तिवाले पांच वालिग मर्दों या औरतोंकी बनी हुई हरएक पंचायत एक इकाई बनेगी।

पास-पासकी ऐसी हर दो पंचायतोंकी, उन्हींमेंसे चुने हुए एक नेताकी रहनुमाईमें, एक काम करनेवाली पार्टी बनेगी।

जव ऐसी १००पंचायतें बन जायं तव पहले दरजेके पचास

नेता अपनेमेंसे दूसरे दरजेका एक नेता चुने और इस तरह पहले दरजेके नेता दूसरे दरजेके नेताके मातहत काम करें। दो सौ पचायतोके ऐसे जोड़ कायम करना तबतक जारी रखा जाय, जबतक कि वे पूरे हिंदुस्तानको न ढंक ले। और बादमें कायम की गई पंचायतोका हरएक समूह पहलेकी तरह दूसरे दरजेका नेता चुनता जाय। दूसरे दरजेके नेता सारे हिंदुस्तानके लिए सम्मिलित रीतिसे काम करें और अपने-अपने प्रदेशोमे अलग-अलग काम करे। जब जरूरत महसूस हो तब दूसरे दरजेके नेता अपनेमेसे एक मुखिया चुने, जो चुननेवाले चाहे तबतक, सब समूहोंको व्यवस्थित करके उनकी रहनुमाई करे।

(प्रातो या जिलोकी अंतिम रचना अभी तय न होनेसे सेवकोंके इस समूहको प्रांतीय या जिला समितियोमे बांटनेकी कोशिश नही की गई। और किसी भी वक्त बनाए हुए समूह या समूहोको सारे हिंदुस्तानमें काम करनेका अधिकार रहेगा। सेवकोंके इस समुदायको अधिकार या सत्ता अपने उन स्वामियो-ने यानी सारे हिंदुस्तानकी प्रजासे मिलती है, जिसकी उन्होंने अपनी इच्छासे और होशियारीसे सेवा की है।)

(१) हरएक सेवक अपने हाथो कते हुए सूतकी या चरखा-संघद्वारा प्रमाणित खादी हमेशा पहननेवाला और नशीली चीजोंसे दूर रहनेवाला होना चाहिए। अगर वह हिंदू है तो उसे अपनेमेसे और अपने परिवारमेंसे हर किस्मकी छुआछूत दूर करनी चाहिए और जातियोके बीच एकताके, सब धर्मोंके प्रति समभावके और जाति, धर्म या स्त्री-पुरुषके,

किसी भेदभावके बिना सबके लिए समान अवसर और दरजेके आदर्शमे विश्वास रखनेवाला होना चाहिए ।

(२) अपने कर्मक्षेत्रमे उसे हरएक गाववालेके निजी संसर्गमे रहना चाहिए ।

(३) गांववालोंमेसे वह कार्यकर्त्ता चुनेगा और उन्हे तालीम देगा । इन सबका वह रजिस्टर रखेगा ।

(४) वह अपने रोजानाके कामका रेकार्ड रखेगा ।

(५) वह गांवोंको इस तरह सगठित करेगा कि वे अपनी खेती और गृह-उद्योगोंद्वारा स्वयंपूर्ण और स्वावलंबी बने ।

(६) गांववालोको वह सफाई और तंदुरुस्तीकी तालीम देगा और उनकी बीमारी व रोगोंको रोकनेके लिए सारे उपाय काममे लाएगा ।

(७) हिंदुस्तानी तालीमी सघकी नीतिके मुताबिक नई तालीमके आधारपर वह गांववालोकी पैदा होनेसे मरने तक सारी शिक्षाका प्रबंध करेगा ।

(८) जिनके नाम मतदाताओकी सरकारी सूचीमे न आ पाए हों, उनके नाम वह उसमे दर्ज कराएगा ।

(९) जिन्होंने मत देनेके अधिकारके लिए जरूरी योग्यता अभी हासिल न की हो, उन्हें उसे हासिल करनेके लिए वह प्रोत्साहन देगा ।

(१०) ऊपर बताए हुए और समय-समयपर बढ़ाए हुए मकसद पूरे करनेके लिए, योग्य फर्ज अदा करनेकी दृष्टिसे सघके द्वारा तैयार किये गए नियमोंके मुताबिक वह खुद तालीम लेगा और योग्य बनेगा ।

सघ नीचेकी स्वाधीन सस्थाओको मान्यता देगा :

(१) अखिल भारत चर्खा-संघ
(२) अखिल भारत ग्रामोद्योग-सघ
(३) हिदुस्तानी तालीमी-सघ
(४) हरिजन-सेवक-संघ
(५) गोसेवा-सघ

सघ अपना मकसद पूरा करनेके लिए गाववालोसे और दूसरोसे चदा लेगा। गरीब लोगोका पैसा इकट्ठा करनेपर खास जोर दिया जायगा।

नई दिल्ली, २९–१–'४८

: १०० :

हे राम !

नई दिल्ली, ३०–१–'४८